विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष —८ अक्टूबर-नवम्बर—१९८६ अंक—१०-

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा, बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

४१. श्री नीरज गुप्ता —रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार घोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप—नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति—अमराबती ,,
४८. डॉ० दर्शन लाल—कुराली (पंजाब)
४९. श्री गोविन्द ढनढनिया – कलकत्ता (प० बंगाल)
५०. श्री निखिल शिवहरे – दमोह (म० प्र०)
५१. श्री बी० भी० नागोरी – कलकत्ता (प० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा – समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री सिनुभाई भलाभाई पटेल – खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एस० सी० डाबरीवाला कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री वृजेश चन्द्र बाजपेयी – जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प० बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्यायएलेन गंज, इलाहाबाद
५९. श्री बसन्त लाल जैन – कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस—दूधपुरा बाजार (समस्तीपुर)
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ – हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी – कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु सेताम—कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका – डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल, राँची
६५. रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम—मद्रास
६६. श्री विनयशंकर सिन्हा—दाऊदपुर, छपरा
६७. रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम —इलाहाबाद
६८. श्रीमती मीरा मिश्रा—इलाहाबाद
६९. स्वामी शान्ति नाथानन्द रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद
७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी – उत्तरकाशी (उ प्र०)
७२. श्री के० अनूप – रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय—छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु० प्रभाकर राव शंखपाल—(महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, झुमरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन सेठी, कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री भृगुनाथ प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—८ | अक्टूबर-नवम्बर—१९८९ | अंक—९

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा' ॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

कबूतर के गले को ऊपर से टटोलने पर जैसे गले में भरे हुए मटर के दाने साफ महसूस होते हैं, वैसे ही विषयासक्त संसारी लोगों से बात चीत करते ही उनमें भरी हुई तरह-तरह की विषयवासनाएँ स्पष्ट प्रतीत हो जाती हैं।

(२)

शत्रु का मुकाबला करने की तैयारी के लिए पहले सैनिक लोग बैरक में ही युद्ध करना सीखते हैं। बैरक में युद्धक्षेत्र की तरह कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार तुमलोग भी संन्यासी जीवन को अपनाने के पहले गृहस्थी की सुख-सुविधाओं के भीतर रहकर साधना करते हुए उस जीवन की कठिनाइयों को सहने के लिए तैयार हो लो।

(३)

जिस आदमी को भूत ने पकड़ा है वह अगर समझ जाए कि उस पर भूत सवार हुआ है तो भूत तुरन्त उसे छोड़ देता है। उसी प्रकार, मायाग्रस्त जीव यदि समझ जाए कि वह माया-पाश में बँधा हुआ है तो वह शीघ्र ही उससे मुक्त हो सकता है।

(४)

दिन में भले ही ठूँस-ठूँसकर खाओ, पर रात में हल्का भोजन करना चाहिए।

मातृ नाम तू गा मना

—सारदा तनय

(मिश्र बिहाग—तीनताल)

नित मातृनाम तू गा मना ।
कह हृदय खोल माँ-माँ मना ॥

क्यों तू जीवन वृथा गँवाए,
मृगतृष्णा के पीछे धाए
अब तो सुख में आ मना ॥

सत्य सारदा-माँ ही जग में,
स्मरण उसी का कर पग-पग में ।
मत अब ठोकर खा मा मना ॥

चिर सुख-शांति चरण में मां के,
पा ले शीघ्र शरण में आके ।
धन्य धन्य बन जा मना ॥

बोलो जय भगवान

—पूनमचन्द तोमर, बीकानेर

आदमी में मूरत है भगवान की ।
पूजा समझ सेवा करो इन्सान की ॥

ब्रह्म और शक्ति को अभिन्न मानो ।
अपने को जानो, स्वयं को पहचानो ॥

'तू' और 'तेरा' है ज्ञान, 'मैं'—'मेरा' अज्ञान ।
यही है पूर्ण ज्ञान, बोलो जय भगवान ॥

*

आध्यात्मिक प्रकाशपुंज स्वामी आत्मानन्द

प्रकाण्ड विद्वान, प्रखर वक्ता व आध्यात्मिक प्रकाश पुंज स्वामी आत्मानंदजी नहीं रहे। रायपुर लौटते समय राजनांदगांव के निकट कोहका में २७ अगस्त, १९८९ को दोपहर बाद हुई एक जीप दुर्घटना में उनका निधन हो गया।

६० वर्षीय स्वामी आत्मानंद रामकृष्ण मिशन विवेकानंद आश्रम के प्रमुख थे। उनके दुर्घटना-ग्रस्त होने की खबरें उड़ते हुए अपराह्न रायपुर पहुंची, और रात में इसकी पुष्टि होते ही पूरा माहौल शोक में बदल गया। स्वामीजी का शव जनता के दर्शनार्थ आश्रम के सत्संग भवन में रखा गया है और देर रात गये श्रद्धा सुमन अर्पित करने शोकाकुल लोगों की भीड़ आश्रम की ओर उमड़ रही है। इनमें स्त्रियां हैं, पुरुष हैं और बच्चे भी। शवयात्रा कल दोपहर बाद निकलेगी तथा महादेव घाट में अंतिम संस्कार होगा।

स्वामी जी इंदौर गये हुए थे तथा नयी जीप क्रमांक एम. आई. आर. ९६२५ से भोपाल, नागपुर होते हुए रायपुर लौट रहे थे। राजानांद गांव के बाद लगभग १६ किलोमीटर दूर ग्राम कोहका में उनकी जीप एकाएक अनियंत्रित हो गयी तथा उलट गयी। स्वामीजी सामान्यतः जीप में आगे बैठते हैं लेकिन दुर्घटना के समय वे पीछे बैठे हुए थे। कहा जाता है कि हल्की बारिश की वजह से जीप स्लिप हुई तथा अनियंत्रित होने के बाद लुढ़क गयी। स्वामीजी नीचे गिर पड़े तथा जीप के नीचे आ गये। उनके सिर में गंभीर चोटें आयीं। उन्हें तत्काल ट्रक से राजनांदगांव जिला अस्पताल ले जाया गया लेकिन कुछ ही समय बाद तीन बजकर बीस मिनट पर उनका निधन हो गया।

उनके दुर्घटनाग्रस्त होने की खबर करीब ४ बजे रायपुर पहुँची। आश्रम में आशंका के बादल उमड़ने-घुमड़ने लगे। स्वामीजी के बाद आश्रम के कर्ताधर्ता स्वामी श्रीकरानंदजी तथा पांच अन्य स्वामीगण तत्काल मोबाइल अस्पताल वाहन से राजनांद गांव रवाना हो गये। उनके रवाना होने के काफी देर बाद संध्या आश्रम में राजनांद गांव कलेक्टर के माध्यम से स्वामीजी के निधन का समाचार पहुँचा। स्वामीजी के साथ जीप में सवार दो लोगों को भी चोटें आयी हैं। इनमें से एक श्री दाऊलाल चन्द्राकर को भिलाई सेक्टर-९ अस्पताल में भर्ती किया गया है। बताया जाता है कि जीप दाऊलाल चन्द्राकर चला रहे थे लेकिन आश्रम के सूत्रों के अनुसार जीप बलराम चला रहे थे जो सिद्धहस्त चालक है। दूसरे घायल व्यक्ति स्वामी सुरेश हैं जिनके कंधे की हड्डी उतर गयी बतायी जाती है। स्वामी सुरेश आश्रम के ही अपने कक्ष में आराम कर रहे हैं।

राजनांद गांव में पोस्टमार्टम के बाद स्वामीजी का शव संध्या ७ बजे रायपुर के लिए रवाना किया गया। यह विचित्र संयोग है कि स्वामीजी की जीप ठीक उसी स्थल पर पलटी जहां १५ दिन पूर्व १२ अगस्त को एक कार एवं ट्रक दुर्घटना में दो युवक अरविन्द शर्मा व ईश्वर लोहिया मारे गये थे। स्वामीजी का शव रात्रि करीब ८.४५ बजे आश्रम पहुँचा। तब तक काफी बड़ी संख्या में श्रद्धालुओं की भीड़ आश्रम में जमा हो गयी थी। शव देखते ही लोगों के संयम का बांध टूट गया तथा वे बिलख पड़े। जैसे-तैसे स्वामीजी का शव वाहन से उतारकर सत्संग भवन के सभाकक्ष में

पहुंचाया गया तथा उसे एक तखत पर रख दिया गया। स्वामीजी के चेहरे पर असीम शांति छायी हुई थी। उन्हें देखने से कतई ऐसा नहीं लगता था कि वे दुनिया में नहीं है। ऐसा महसूस होता था कि वे मानो निद्रा में हैं लेकिन उनकी यह निद्रा चिरनिद्रा थी।

स्वामीजी के निधन की खबर जैसे-जैसे शहर में फैलती गयी, जन सैलाब आश्रम की ओर उमड़ता गया। स्वामीजी को एक नजर देखने एवं श्रद्धा-सुमन अर्पित करने वालो में बूढ़े, युवा, बच्चे, स्त्री, पुरुष सभी थे। स्त्रियां तो उन्हें देखकर फफक कर रो पड़ती थीं। अनायास पुरुषों की आंखों से भी अश्रु चू पड़ते थे। सभाकक्ष का पूरा माहौल गम में डूब गया था। स्वामी आत्मानंद जी का "विवेक चूड़ामणि" पर आज संध्या ५॥ बजे प्रवचन था। उनके दुर्घटनाग्रस्त होने की खबर के बाद प्रवचन तो नहीं हो सका, अलबत्ता रात्रि ८ बजे तक भजन कीर्तन चलता रहा। इस पर विराम उस समय लगा, जब भक्त जनों को स्वामी जी के निधन की सूचना मिली।

रात्रि करीब सवा दस बजे स्वामीजी के पिता श्री धनीराम वर्मा तथा परिवार के अन्य सदस्यों को सभाकक्ष में स्वामीजी के शव के निकट ले जाया गया। बुरी तरह टूट चुके श्री धनीराम तथा अन्य शव देखते ही दहाड़ मार कर रोने लगे तथा शव पर गिर पड़े। जैसे-तैसे उन्हें सम्हाला गया। परिवारजनों के रुदन से माहौल इतना गमगीन हो गया कि स्थल पर मौजूद प्रायः सभी लोगों की आंखें गीली हो गयीं। स्वामीजी का शव बर्फ की सिल्लियों पर रखा हुआ है तथा सभाकक्ष में अजीब शांति छायी हुई है जिसमें गम है, रुदन है। दुःख से बोझिल मन में इतना खालीपन भर गया है कि व्यथा की अभिव्यक्ति शब्दों से नहीं केवल आंखों से हो रही है। सभाकक्ष में लोगों के आने का तांता लगा हुआ है तो आश्रम परिसर में जहां-तहां लोगों के झुंड खामोशी अख्तियार किये या तो खड़े हैं या बैठे।

स्वामीजी के निधन की खबर सुनकर सांसद श्री केयूरभूषण अपनी पत्नी सहित आश्रम पहुंचे तथा उन्होंने स्वामीजी को श्रद्धासुमन अर्पित किये। रायपुर ग्रामीण के विधायक श्री रणवीर सिंह शास्त्री भी उनके साथ थे। बाद में जनता दल के नेता तरुण चटर्जी व शंकर दुबे भी पहुंचे तथा उन्होंने श्रद्धांजलि अर्पित की।

शवयात्रा दोपहर बाद

स्वामी श्रीकरानंद ने जानकारी दी कि स्वामी आत्मानंद जी का शव सामान्यजनों के दर्शनार्थ यहां सोमवार को अपरान्ह १२ बजे तक रखा रहेगा। शवयात्रा १२ बजे के बाद निकलेगी। स्वामी जी का अग्निदाह महादेवाघाट में सम्पन्न होगा। चिता को मुखाग्नि कौन देगा इस पर बेलुड़ मठ से निर्देश के बाद ही निर्णय लिया जायेगा। स्वामीजी के निधन की जानकारी बेलूड मठ के स्वामी भूतेशानंदजी महाराज को दे दी गयी है। शोक विह्वल स्वामी श्रीकरानंद ने शोक संदेश में कहा कि स्वामी आत्मानंदजी महाराज छत्तीसगढ़ की माटी में जन्मे थे और सारा जीवन इसी क्षेत्र की सेवा करते रहे। उनका अकास्मिक निधन इस सर्मपित जीवन की इस क्षेत्र के लिये पूर्णाहुति है। उनके इस अभाव की क्षतिपूर्ति करना कठिन है। हम प्रभु के चरणों में यही प्रार्थना करते हैं कि उनका आदर्श जीवन हम सबको प्रेरणा दे।

देर रात प्राप्त जानकारी के अनुसार नारायणपुर (वस्तर) आश्रम के प्रमुख स्वामी निखिलात्मानंदजी जो स्वामीजी के छोटे भाई हैं, रायपुर के लिए रवाना हो गये हैं।

मुख्यमंत्री द्वारा शोक व्यक्त

मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल वोरा ने स्वामी

आत्मानंद के निधनपर गहरा दुखः व्यक्त किया है। श्री वोरा ने अपने शोक संदेश में कहा है कि रायपुर स्थित रामकृष्ण मिशन के प्रमुख के रूप में स्वामी जी ने जनसाधारण की भलाई के लिए अनेक कार्यक्रम चलाये। बस्तर के सबसे पिछड़े आदिवासी अंचल में हाल ही में स्वामी जी के नेतृत्व में मिशन ने शैक्षणिक और स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार कर समाज सेवी संस्थाओं के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया है।

राज्य के छत्तीसगढ़ अंचल में सक्रिय रहने के बावजूद समय-समय पर स्वामी आत्मानंद का मार्गदर्शन प्रदेश के विभिन्न अंचलों को मिलता रहा है। स्वामी आत्मानंद के निधन से प्रदेश को अपूरणीह क्षति हुई है। मुख्यमंत्री ने दिवंगत आत्मा की शांति के लिये ईश्वर में प्रार्थना की है।

सांसद श्री केयूर भूषण ने शोक संवेदना व्यक्त करते हुए कहा कि छत्तीसगढ़ की धरती में जन्मे देश की महान विभूति से हम वंचित हो गये। रायपुर आज गौरव हीन हो गया। एक अर्से से यह शहर उनसे गौरवान्वित होता रहा है। मेरा सौभाग्य रहा है कि उनके सान्निध्य के क्षण मिलते रहे हैं। स्वामी जी का निधन उनके परिजनों व स्नेहियों के लिए वज्राघात है। ईश्वर से कामना है कि वे शोक संतप्त परिजनों और आश्रम के सदस्यों को इस दुःख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

विश्व हिन्दू परिषद् के केन्द्रीय सहमंत्री श्री नरसिंह जोशी ने स्वामी आत्मानंद जी के निधन पर गहरा शोक व्यक्त करते हुए इसे देश के लिए अपूरणीय क्षति कहा है। रायपुर के कई वरिष्ठ कांग्रसजनों सर्वश्री ललित तिवारी, गंगाराम शर्मा, नरसिंह मंडल, सुभाष शर्मा, लक्ष्मण माथुरिया ने स्वामीजी के निधन पर गहन शोक व्यक्त करते हुए इसे बहुत बड़ी क्षति बताया है। वन, पर्यटन तथा संस्कृति मंत्री डा० कन्हैयालाल शर्मा और स्वास्थ्य मंत्री श्री महेन्द्र बहादुर सिंह ने प्रसिद्ध समाजसेवी तथा रामकृष्ण मिशन रायपुर के प्रमुख स्वामी आत्मानंद के निधन पर गहरा दुख व्यक्त किया है। मंत्री द्वय ने स्वामी जी के परिजनों के प्रति अपनी संवेदनाएँ प्रकट की हैं।

एक अद्वितीय प्रतिभा का सफर

६० वर्षीय स्वामी आत्मानंद जी ने इस अंचल में 'आध्यात्मिक पुरुष' के रूप में मान्यता प्राप्त की। स्वामीजी अत्यंत प्रतिभाशाली वक्ता और लेखक थे। उनके अध्यात्म तथा अन्य विषयों पर प्रवचन देश भर में आयोजित होते रहे। उनके प्रवचन और लेख, उनकी विषयों को वैज्ञानिक दृष्टि से प्रतिपादित करने की उनकी अपूर्व क्षमता को प्रदर्शित करते थे। विज्ञान का विद्यार्थी होने के नाते उनका विषय संबंधी विवेचन वैज्ञानिक दृष्टि से संपन्न व्यक्ति को मुग्ध कर देता था। आप गीता के प्रकाण्ड विद्वान थे। उनका श्रीमद् भगवद् गीता पर हुए २१३ प्रवचनों में से प्रथम ४४ प्रवचनों का संग्रह 'गीता तत्व चिंतन' भाग—१ के नाम से हाल ही में प्रकाशित हुआ था। इसमें दो अध्यायों पर ही विवेचना है। ५५० पृष्ठों की इस पुस्तक की सात हजार से अधिक प्रतियां अब तक बिक चुकी हैं।

स्वामीजी की मान्यता थी कि 'शरीर नश्वर हैं। इसका क्या भरोसा।' उन्होंने यह बात अपने भाई के निधन के समय कही थी। और आज यह बात उन पर ही लागू हो गयी।

स्वामीजी ने दीन-दुखियों की सेवा को अपना व्रत बनाया और जीवन पर्यन्त वे इसी में जुटे रहे। ग्रामीण क्षेत्रों में रामकृष्ण मिशन ने अन्य सेवा कार्यों के साथ ही राहतकार्य भी संपादित किये।

इन सबके पीछे स्वामीजी की ही प्रेरणा रहती आयी थी। उनके समाज सेवा के कार्यों से प्रभावित होकर ही दो वर्षों पूर्व म०प्र०शासन ने उन्हें इंदिरा गांधी पुरस्कार से सम्मानित करना चाहा किन्तु उन्होंने इसे यह कहकर लेने से इंकार कर दिया कि वे संन्यासी हैं और सन्यासी कभी पुरस्कार नहीं लेता। स्वामजी ने उस समय कहा था कि सरकार यदि संस्था को यह पुरस्कार देना चाहे तो उसे स्वीकार किया जा सकता है किंतु सरकार द्वारा पुरस्कार के विषय में बनाये गये नियमों में व्यक्ति ही पुरस्कार का अधिकारी था। स्वामीजी ने सदा ही संन्यासी धर्म को महत्ता दी।

स्वामीजी की प्रारंभिक शिक्षा रायपुर में हुई। आप सेन्टपाल्स स्कूल के छात्र रहे। मेट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उच्च अध्ययन के लिए वे नागपुर चले गये। वहां आपने रामकृष्ण मिशन छात्रावास में रहकर बी. एस.सी. (गीणत) की परीक्षा प्रवीण्य सूची में प्रथम स्थान प्राप्त कर उत्तीर्ण की। स्वामीजी ने आई० ए० एस० की लिखित परीक्षा पास करने के बावजूद साक्षात्कार में जाना उचित नहीं समझा। कारण उनका मन समाज सेवा से जुड़ चुका था। उन्होंने रामकृष्ण मठ- मिशन में प्रवेश ले लिया। कुछ समय बाद जब वे रायपुर लौटे तो उन्होंने स्व० श्री गणेशराम मिश्र के बूढ़ापारा स्थित मकान के एक कमरे में रामकृष्ण सेवा समित की स्थापना की। बात १९६२ की है। शीघ्र ही स्वामीजी का कार्य क्षेत्र विस्तार पाने लगा। तभी स्वामीजी के कार्यों से प्रभावित होकर राज्यपाल श्री पाटस्कर ने वर्तमान में जहां रामकृष्ण मिशन है, वह जमीन दिलवाई। यह संस्था १९६८ में रामकृष्ण मिशन, बेलुड़ मठ से सम्बद्ध हो गयी और कालान्तर में रामकृष्ण मिशन विवेकानंद आश्रम के नाम से पहचानी गई। स्वामीजी इस केन्द्र के संस्थापक सचिव थे। सह संस्था एक त्रैमासिक पत्रिका 'विवेक ज्योति' प्रकाशित करती है जिसके संपादक स्वामीजी ही थे।

६ अक्टूबर १९२९ को ग्राम बरबंदा मे जन्मे स्वामीजी के बचपन का नाम तुलेन्द्र वर्मा था। पिता श्री धनीराम वर्मा जिले के प्रमुख सहकारी कार्यकर्ताओं में हैं। स्वामीजी के एक भ्राता डा० नरेन्द्र वर्मा का कुछ ही वर्षों पूर्व निधन हुआ। स्वामीजी के दो भ्राता मिशन के कार्यों से ही जुड़े हैं। बीते वर्ष ही स्वामी आत्मानंद जी की आंखों का आपरेशन सोवियत संघ में संपन्न हुआ था।

स्वामीजी ने ५ वर्षों पूर्व बस्तर के आदिवासी इलाके में जन-जागृति का प्रकाश फैलाने की दृष्टि से नारायणपुर में एक विराट वनवासी सेवा केन्द्र की स्थापना की थी। यह स्वामीजी की सर्वाधिक महात्वाकांक्षी योजना थी और इसने प्रारंभिक काल में ही अच्छे परिणाम दिये। बीते शैक्षणिक सत्र में इस केन्द्रमें रहकर पढ़ रहे अबू— झमाड़ के एक छात्र ने संपूर्ण बस्तर जिले में प्रथम स्थान प्राप्त किया। स्वामीजी ने इस आश्रम की संरचना कुछ इस प्रकार की है कि यहां के बच्चे पढ़कर निकलने के बाद आत्मनिर्भरता का जीवन व्यतीत कर सकें। स्वामीजी ने बीते वर्ष ही प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी से भेंट कर, उनसे नारायणपुर आने का आग्रह किया था किंतु राजीव गाँधी उन्हें समय नहीं दे पाये। मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल वोरा ने इस आश्रम के संचालन के लिए सरकार की ओर से भरपूर मदद की। अबूझमाड़ के गहन जंगलों में भी दस सेवा केन्द्र इस संस्था ने प्रारंभ किये हैं जिनमें प्रत्येक में आश्रम विद्यालय, स्वास्थ्य केन्द्र, उचित मूल्य की दुकान तथा कुटीर उद्योग प्रशिक्षण की सुविधा है। नारायणपुर में भी निःशुल्क पब्लिक स्कूल, ५० शय्या वाला अस्पताल, चल चिकित्सालय, युवा प्रशिक्षण केन्द्र

तथा उचित मूल्य की दुकानें चलाई जा रही है।

रामकृष्ण मिशन, बेलुड़ स्वामीजी के कार्य कौशल से इतना अधिक प्रभावित था कि वह उन्हें अमरीका में प्रचार अभियान के लिए भेजना चाहता था किंतु उन्होंने इससे साफ इंकार कर दिया। आप सदा छत्तीसगढ़ को ही केन्द्र में रखकर कार्य करने के अभिलाषी रहे। छत्तीसगढ़ उनकी रग-रग में समाया हुआ था। जब कभी कोई उनके पास एकांत में जाता तो वे छत्तीसगढ़ के पिछड़ेपन को लेकर अपनी चिंता का इजहार करने से नहीं चूकते थे। बीते चुनाव के समय स्वामीजी को चुनाव मैदान में उतारने की बहुतों ने कोशिश की थी किंतु वे उससे अलग ही रहे। उन्हें राजनीति में तनिक भी दिलचस्पी नहीं थी। उनका कहना था कि वे समाज सेवा के कार्य से अपने को अलग नहीं कर सकते। यह तो मेरी आतमा के समान है।

स्वामीजी का संगठन कौशल अभूतपूर्व था। उनके निर्देशन में मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा और राजस्थान में रामकृष्ण-विवेकानन्द के नाम पर लगभग २० आश्रम परिचालित हो रहे हैं। स्वामीजी इन सबका श्रेय अपने पूज्यपाद गुरु स्वामी विरजानन्द जी महाराज को देते थे जो स्वामी विवेकानन्द जी के शिष्य रहे। यहां उल्लेखनीय है कि स्वामी विवेकानन्द जी ने अपना कुछ समय रायपुर में बिताया था। स्वामी आत्मानन्द जी के प्रयास से ही दो वर्ष पूर्व रविशंकर विश्वविद्यालय में विवेकानन्द पीठ की स्थापना हुई थी।

(अमृत संदेश, रायपुर २८ अगस्त अंक से साभार)

卐

महावीर निर्वाण दिवस (२९ अक्टूबर) के अवसर पर

वैज्ञानिक धर्म के प्रवक्ता भगवान महावीर

आचार्य तुलसी

संसार में दो प्रकार के तत्व हैं—लौकिक और लोकोत्तर। कौन से तत्व लौकिक हैं और कौन से लोकोत्तर हैं ? इस वर्गीकरण में थोड़ी-सी जटिलता उपस्थित हो जाती है। सामान्यतः लौकिक तत्व उन्हें माना जाता है, जिनका संबंध इस दृश्यमान लोक से है। दूसरे शब्दों में लौकिक तत्व वे हैं, जिनसे व्यवहार साधा जाता है। निश्चय की दृष्टि से देखा जाय तो लोकोत्तर तत्व है आत्मा और आत्मा के स्वरूप को उपलब्ध करने की सारी प्रक्रिया। इस परिभाषा के अनुसार आत्मशुद्धि का साधन धर्म एक लोकोत्तर तत्व है।

भगवान महावीर लोकोत्तर धर्म के प्रवक्ता थे। लोकोत्तर धर्म का प्रवर्तन कर वे स्वयं भी लोकोत्तर बन गये थे। लोकोत्तर बनकर वे लोक से अदृश्य नहीं हो गये थे। उनके अभिमत से लोकोत्तर बनने का अर्थ था, लोक को समग्रता से जानना या लोकोत्तर हो जाना। उन्होंने लोक को समग्रता से जाना, देखा और वे लोकाकार हो गये। लोक का कोई भी तत्व, फिर चाहे वह मूर्त हो या अमूर्त, उनकी ज्ञान चेतना से बाहर नहीं रहा। उनका ज्ञान इतना विशद था कि वह एक नया विज्ञान बनकर संसार में चमका।

कुछ लोग धर्म और विज्ञान को दो विरोधी तत्व मानते हैं। इस मान्यता के आधार पर दो वर्ग स्थापित हो गये एक वैज्ञानिकों का धर्म, दूसरा धार्मिकों का वर्ग। इस वर्गीकरण की निष्पत्ति

यह हुई कि विज्ञान भी अधूरा रह गया और धर्म भी पूर्णता के शिखर को नहीं छू सका। धर्म और विज्ञान की खंडित प्रतिभाओं ने लोक जीवन में जो तत्व उत्पन्न किया, उससे लोगों की मानसिकता भी खंडित हो गयी। खंडित मानसिकता से वह धर्म या विज्ञान का सम्पूर्ण व्यक्तित्व अंकित किया जा सके यह संभव नहीं।

गहराई से देखा जाय तो धर्म और विज्ञान के उद्देश्यों में कोई अन्तर नहीं है। धर्म का उद्देश्य है—अतीन्द्रिय चेतना का विकास और विज्ञान का उद्देश्य है अतीन्द्रिय तत्वों की खोज। अतीन्द्रिय चेतना के विकास या अतीन्द्रिय तत्वों की लोक फलित है—स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रस्थान। स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश की निष्पत्ति है नयी संस्कृति का अवतरण, उस संस्कृति में जन्मे और पले-पुसे लोगों की दृष्टि, सोच और क्रिया में स्वाभाविक रूप में विलक्षणता के प्रतिबिम्ब उभरने लगते हैं।

विज्ञान ने मानव जाति को जो देन दी है, उससे समूचा संसार चकित है, उपकृत है, पर वह परितृप्त नहीं हो सकता है। "ज्यों-ज्यों दवा की मर्ज बढ़ता गया" इस जनश्रुति के अनुसार जितने नये आविष्कार हुए, आवश्यकताएँ उतनी ही बढ़ती गयीं। तृप्ति की खोज में जिस गहरी प्यास का अवदान आदमी को मिला है, उससे उसकी आकांक्षाओं का अन्तहीन विस्तार होता जा रहा है।

भगवान महावीर ने भी एक विज्ञान संसार को दिया। वह है—परितृप्ति का विज्ञान। उनके अनुसार सबसे बड़ा विज्ञान है अहिंसा या समता का सिद्धान्त। बीसवीं सदी का आदमी इस विज्ञान को सही रूप में समझ ले और अपने जीवन में इसका प्रयोग शुरू कर दे, तो वह विशेष आह्लाद, अतिरिक्त अनुभूति और नई दीप्ति के साथ इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर सकता है।

अहिंसा का विज्ञान रूस, अमरीका या भारत के लिए ही नहीं, समूचे विश्व के लिए है। इसका सार्वभौम उपयोग है। विश्व के किसी भी कोने में रहने वाले मनुष्य क्या, प्राणी मात्र के हितों की भी सुरक्षा है इस विज्ञान में। इसकी पृष्ठभूमि में भगवान महावीर ने कहा—"सव्वे अकंत दुक्खा य अओ सव्वे अहिंसया"—दुःख किसी भी प्राणी को प्रिय नहीं है इसलिए संसार का कोई भी प्राणी बध्य नहीं है। इस सिद्धांत ने अहिंसा की प्रासंगिकता को त्रैकालिक प्रमाणित कर दिया है।

भगवान महावीर की अहिंसा का सम्बन्ध किसी के प्राण वियोजन तक ही सीमित नहीं है। प्राण वियोजन तो बहुत छोटी बात है। निश्चित समय के बाद शरीर से प्राणों का वियोजन तो होना ही है। पर किसी प्राणी के मन को आहत करना भी हिंसा ही है, यह कितना सूक्ष्म और वैज्ञानिक तथ्य है।

कुछ लोगों का चिन्तन है कि हिंसा के बिना जीवन नहीं चल सकता। यह बात सही है। पर जीने के लिए हिंसा की अनिवार्यता होने मात्र से हिंसा को सिद्धान्त तो नहीं माना जा सकता। जिन्होंने हिंसा को सिद्धान्त रूप में अपनी स्वीकृति दी, भगवान महावीर ने उन सबको एकत्रित कर अपनी ओर से स्पष्ट उद्घोषणा करते हुए कहा—"सव्वे पाणा सव्वे भूता सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण प्राणी, भूत, जीव और सत्व का हनन नहीं करना चाहिए, उन पर शासन नहीं करना चाहिए, उन्हें दास नहीं बनाना चाहिए, उन्हें परिताप नहीं देना चाहिए और उनका प्राण वियोजन नहीं करना चाहिए।

अहिंसा की यह उन्नत भूमिका आत्मौपम्य की भावना से ही प्रशस्त हो सकती है। जो लोग इसकी अवहेलना कर प्राणियों को हंतव्य मानते

हैं, वे भी अपने बचाव के लिए सदा तत्पर रहते हैं। वे दूसरों से कहते हैं—तपे हुए लोहे का गोला हाथ में लो। उन्हें कहा जाय कि वह गोला वे स्वयं हाथ में लेकर दें तो वे कह देते हैं- हम तो इसे हाथ में नहीं लेंगे। हाथ में लेने से हमारा हाथ जल जायेगा। उनका हाथ जल जायेगा, तो दूसरों का क्यों नहीं जलेगा ? जो स्थिति स्वयं के लिए पीड़क है, वह दूसरों के लिए पीड़क क्यों नहीं होगी ?

भगवान महावीर ने तत्व को समझने की दो दृष्टियाँ दीं—संक्षेप दृष्टि और विस्तार दृष्टि। संक्षेप दृष्टि से देखा जाय तो हिंसा पाप है। इस निरूपण में संसार के समस्त पापों का समावेश हो जाता है। क्योंकि हिंसा का अर्थ है प्रमाद। असत्य भाषण, चोरी करना तथा इसी प्रकार के सब अपराध प्रमाद हैं। इसी बात को कुछ विस्तार से समझने की जरूरत हो तो हिंसा, असत्य, चोरी मैथुन और परिग्रह इन पाँच पापों में सब पाप अन्तर्गर्भित हो जाते हैं। और अधिक विस्तार दिया जाय तो अठारह पापों की व्यवस्था है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की विवक्षा से किये गये तत्व निरूपण में कहीं भी विप्रतिपत्ति की संभावना नहीं रहती। यह विवक्षा ऐसा विज्ञान है, जो साधक को पूरी तरह से सत्य के परिसर में रख सकता है।

साधना के सम्बन्ध में भगवान महावीर का दृष्टिकोण सर्वथा मौलिक था। सामान्यतः सभी धर्मों के संन्यासी आश्रमवासी बनकर साधना करते हैं। आश्रम-व्यवस्था के साथ अरण्यवासी, पहाड़ या गुफावासी संन्यासियों का विवरण भी उपलब्ध होता है। महावीर ने कहा—'साधना देश-काल और परिस्थितियों से अनुबंधित नहीं होनी चाहिए। उन्होंने घूमते-फिरते साधना करने की विधा प्रचलित की। एकान्त साधना की दृष्टि से भी उन्होंने द्वार बंद नहीं किये। जंगल, सूने घर, श्मशान आदि में उन्होंने स्वयं साधना के विशिष्ट प्रयोग किये थे, किन्तु उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि एकान्तवास ही साधना के लिए उपयुक्त है। यदि एकान्त साधना का ही क्रम रहता तो सामूहिक साधना पद्धति विकसित नहीं हो पाती। भगवान महावीर के साथ हजारों हजार साधकों के साधना करने से समूह चेतना के जागरण की नयी-नयी दिशाएँ खुल गयीं।

साधना के साथ स्थान विशेष की प्रतिबद्धता न होने से जैन साधकों के लिए पदयात्रा भी साधना का एक अभिन्न अंग बन गया। यद्यपि कुछ व्यक्ति यहां तक कह देते हैं कि उस समय यान वाहनों की इतनी सुविधा नहीं थी, इसलिए पदयात्रा का प्रावधान किया गया। मेरे अभिमत से यह चिन्तन संकीर्ण दृष्टि का प्रतिफलन है। हमारे जितने तीर्थंकर हुए हैं, वे सभी त्रिकालदर्शी थे। त्रिकालदर्शी व्यक्ति का चिन्तन कभी देश और काल से बाधित नहीं होता। भगवान महावीर ने स्वयं पदयात्रा की और अपने शिष्यों को ग्रामानुग्राम विहार करने का निर्देश दिया। इस संदर्भ में विचार करने पर यह तथ्य प्रकट होता है कि पदयात्रा एक बड़ी तपस्या है और वैज्ञानिकता है।

विज्ञान के अनुसार पृथ्वी में ऊर्जा होती है। नंगे पाँव चलने से उस ऊर्जा के साथ शरीर का सीधा सम्बन्ध होता है। अपनी आवश्यकता के अनुसार शरीर उस ऊर्जा को ग्रहण करता है और स्वस्थ बना रहता है। इस बात का अनुभव करके भी देखा जा सकता है कि वायुविकार, मंदाग्नि, अनिद्रा, आदि बीमारियां पदयात्रा करने से बहुत अंशों में शांत हो जाती हैं।

वर्तमान में प्रायः सभी संन्यासी पदयात्रा से विमुख होकर यान यात्रा करने लगे हैं। इससे हमारी सांस्कृतिक विरासत की क्षति हो रही है।

और तो क्या, कुछ जैन मुनि भी गतानुगतिक होकर पदयात्रा छोड़कर वाहन का प्रयोग करने लगे हैं। यह बात भगवान महावीर के दृष्टिकोण से मेल नहीं खाती।

जैन मुनियों की साधना का एक विलक्षण पहलू है "केशलोच"। ऊपर-ऊपर से देखने पर लगता है कि यह क्रूरता है। पर वास्तव में यह स्वावलम्बी और सहिष्णु जीवन का उदाहरण है। संन्यासी केश रखें और उसकी साज-सज्जा का ध्यान रखें तो वह अलंकार हो जाता है। समुचित देखभाल के अभाव में जो जटाजूट बढ़ता है, उसमें हिंसा की संभावना बनी रहती हैं। गृहस्थों की भांति कैंची या उस्तरे का प्रयोग संन्यासी को इष्ट नहीं हैं। ऐसी स्थिति में प्रतिवर्ष एक या दो बार लुंचन करके केशों को उतारना साधना, सहिष्णुता और कला का प्रतीक तो है ही, इसे वैज्ञानिक प्रयोग भी माना जा सकता है। जिस प्रकार क्लोरोफार्म सुंघाने के बाद की जाने वाली शल्य क्रिया में कष्ट का अनुभव नहीं होता है, वैसे ही भेद विज्ञान की अनुप्रेक्षा कर केश लोच करवाया जाय तो उसमें पीड़ा का बोध काफी कम हो जाता है।

रात्रि भोजन नहीं करना, सचित्त भोजन नहीं करना, सचित पानी नहीं पीना, नवकारसी (सूर्योदय के बाद ५० मिनट तक कुछ नहीं खाना) आदि अनेक अनुष्ठान हैं, जिनको रूढ़ परम्परा कहा जा सकता है। पर इन सबके पीछे वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, जिसका सम्बन्ध पाचन तंत्र की सक्रियता और कीटाणुओं से बचाव के साथ है। मूल अहिंसा का लक्ष्य तो इनमें सर्वोपरि है ही। सही दृष्टि से शोध किया जाय तो भगवान महावीर द्वारा निरूपित अनेक तथ्यों के पीछे रहा उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता है।

भगवान महावीर ने साधना की दृष्टि से तपस्या को बहुत महत्व दिया। तपस्या को वे चिकित्सा मानते थे। एक ओर उन्होंने कहा – "तेगिच्छं नाभिनंदेज्जा" साधु चिकित्सा को स्वीकार न करें। शरीर से काम लेना और बीमारी होने पर उसकी चिकित्सा नहीं करवाना---इन दोनों बातों का आपस में मेल नहीं है। पर भगवान महावीर इस बात को जानते थे कि उपवास चिकित्सा का प्रयोग करने से किसी दूसरे प्रकार की चिकित्सा की जरूरत ही नहीं रहेगी। इस दृष्टि से उन्होंने अचिकित्सा का सिद्धान्त दिया।

तपस्या काल में वे आसन और ध्यान के नये-नये प्रयोग करते रहते थे। आज विज्ञान कहता है कि ग्रंथियों के स्राव और रसायन बदलने से व्यक्ति के स्वभाव और स्वास्थ्य में भी विशेष लाभ हो सकता है। किन्तु विज्ञान यह नहीं बता सका है कि अमुक ग्रंथि को सक्रिय करने के लिए कौन-सा उपाय कारगर हो सकता है और किस प्रयोग से रसायनों में बदलाव संभव है। जबकि भगवान महावीर ने ध्यान के प्रयोग से स्वभाव और स्वास्थ्य में अप्रत्याशित परिवर्तन की बात कही थी।

इस प्रकार की न जाने कितनी बातें हैं, जो भगवान महावीर को वैज्ञानिक धर्म का प्रवक्ता मानने के लिए ठोस आधार बन सकती हैं। उन्होंने बारह वर्ष की कठोर साधना के पश्चात् आत्मसाक्षात्कार किया। जिस व्यक्ति को आत्म-साक्षात्कार हो जाता है, वह सत्य को प्रत्यक्ष देख लेता है। सत्य ही सबसे बड़ा विज्ञान है। सत्य को समझने या पाने के लिए उन्होंने जो-जो दृष्टियां दीं, वे सब अपने-आप में पूर्ण वैज्ञानिक हैं। उनके अनुयायी कहलाने वाले या उन पर रिसर्च करने वाले लोग उन दृष्टियों को समझ लें तो धर्म की वैज्ञानिकता अपने-आप प्रमाणित हो सकती है।

(दैनिक हिन्दुस्तान, पटना से साभार)

भविष्य के लिए वैज्ञानिक धर्म

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम वाराणसी

विज्ञान, तकनीकी एवं राजानीति द्वारा प्रभावित आधुनिक युग में धर्म एक अत्यन्त विवादास्पद विषय हो गया है। एक ओर तो प्रत्यक्ष प्रमाण, तार्किक गवेषणा एवं युक्तिवाद पर आधारित विज्ञान ने धार्मिक आस्थाओं एवं अन्ध विश्वासों की नींव हिला दी है, तो दूसरी ओर धर्म के नास पर हो रहे झगड़े, युद्ध एवं हिंसादि को देखकर लोग उससे दूर होते जा रहे हैं। बहुतों के मन में यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि क्या आधुनिक युग में, वर्तमान संदर्भ में व्यक्ति एवं समाज के लिए धर्म की कोई उपयोगिता या उपादेयता है ? और यदि है तो कौन से अथवा किस प्रकार के धर्म की ? यह एक सामयिक एवं समुचित प्रश्न है, जिसकी "धर्म जनता के लिए अफीम है" कह कर अवमानना नहीं की जा सकती, क्योंकि राजनीति, कला, श्रम, अर्थ व्यवस्था आदि की तरह धर्म भी मानव एवं उसके समाज का पुरातन काल से ही एक अभिन्न अंग रहा है। अतः धर्म के अर्थ उसके औचित्य एवं उसकी उपादेयता के विषय में जिज्ञासा अवश्य करनी चाहिए। ऐसा पुनर्मूल्यांकन हमें उसके स्वस्थ स्वरूप को समझने एवं विकृतियों को दूर करने में सहायता करेगा।

सर्व प्रथम तो धर्म की परिभाषा ही लें। अंग्रेजी शब्दकोश के अनुसार एक सर्व शक्तिमान् त्राणकर्त्ता ईश्वर में विश्वास एवं इस विश्वास का जीवन पर प्रभाव धर्म कहलाता है। ईश्वर की भक्ति या आराधना भी इसी विश्वासनिष्ठ धर्म का एक अंग है। वस्तुतः धर्म शब्द संस्कृत की 'धृ धारणे' धातु से बना है एवं महाभारत में उसकी परिभाषा इस प्रकार की गयी है।

"धारणाद्धर्मित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः
यः स्याद्धारण संयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥

तात्पर्य यह कि पुरातन भारतीय चिन्तन के अनुसार धर्म वह तत्व जो व्यक्ति एवं समाज को धारण एवं संगठित करके रख सके तथा उसे घात-प्रतिघातों से नष्ट अथवा विचलित होने से बचाये। धर्म की सुनिश्चित रूप से यह परिभाषा अत्यन्त व्यापक एवं असांप्रदायिक है। धारणा करने वाला यह तत्व कुछ भी हो सकता है, लेकिन मानव इतिहास के अवलोकन पर यह पता चलता है कि विश्वास—एक अतीन्द्रिय सत्ता में विश्वास —एक ऐसा शक्तिशाली तत्व है जो समाज को धारण करने में समर्थ है। मानव चिर जीवन चाहता है। वह जरा रोग एवं मृत्यु से बचना चाहता है। जब उसे प्राकृतिक प्रकोपों एवं मानव अथवा मानवेतर हिंस्र प्राणियों से खतरा उत्पन्न होता है तो वह एक ऐसे ईश्वर की कल्पना करता है जो उसकी इन सभी विपदाओं से रक्षा कर अभय प्रदान कर सके। इस प्रकार की प्रारम्भिक आस्था विकसित होकर तीन वस्तुओं में आस्था या विश्वास में परिणत हो जाती है : (१) ईश्वर में विश्वास, (२) अवतार, पैगम्बर या धर्म-गुरु में विश्वास, (३) पुस्तक विशेष या धर्मशास्त्र में विश्वास। विश्व के सभी प्रमुख प्रचलित धर्म इन तीन में से एक, अनेक या सभी पर आधारित हैं.

विश्वास पर आधारित धर्मों में दो बड़े दोष हैं। सर्वप्रथम तो जहां वे एक ही आस्था विश्वास वाले समुदाय के लोगों को संगठित करते है, वहीं वे उस धर्म विशेष को अन्य धर्मों से पृथक भी करते हैं। तात्पर्य यह है कि वे विघटनकारी शक्ति का रूप ले लेते हैं। विविध धर्मों में झगड़े इसी कारण होते हैं। दूसरा बड़ा दोष यह है कि ऐसे धर्म विज्ञान के सत्यान्वेषी दृष्टिकोण के सामने टिक नहीं पाते। विज्ञान सभी वस्तुओं का प्रमाण चाहता है। वह बिना देखे या अनुभव किये किसी वस्तु को स्वीकार नहीं करना चाहता। वह ईश्वर का भी प्रमाण चाहता है। जिस प्रकार अणु परमाणु को प्रयोगशाला में देखा जा सकता है, उसी तरह क्या ईश्वर को नहीं देखा जा सकता ? यह है विज्ञान का प्रश्न ! इसी अनुसन्धानात्मक आधुनिक मनोवृति के आघातों से विश्वास परक धर्मों की नींव हिल गयी है।

आस्था एवं विश्वास का सम्बन्ध हमारे हृदय अथवा भावनात्मक पक्ष से होता है। इनमें बुद्धि, तर्क एवं विचार को स्थान नहीं होता। कहावत भी है कि विश्वास अन्धा होता है। इसके विपरीत, विज्ञान पूर्णतः तर्क पर आधारित होता है। युक्ति एवं विचार उसके अनिवार्य अंग है। अतः विज्ञान एवं युक्ति का स्वभावतः ही धर्म से विरोध होता है। यही कारण है कि आधुनिक युग में विचार प्रवण व्यक्ति धर्म को स्वीकार करने में हिचकचाते हैं। वे एक अधिक युक्तिसंगत, वैज्ञानिक धर्म की मांग करते हैं। जहां तक मानव की वाह्य विपदाओं से रक्षा का प्रश्न है, विज्ञान ने तकनीकी के रूप में मानव को एक शक्तिशाली अस्त्र प्रदान किया है, एवं इसे बहुत हद तक प्रकृति पर विजय प्राप्त करने में सफल बनाया है।

विज्ञान की प्रारम्भिक सफलताओं के फलस्वरूप पाश्चात्य देशों का एक बड़ा जन समुदाय धर्म विमुख एवं विज्ञान का उपासक बन गया है। किन्तु शनैः-शनैः परिस्थितियाँ परिवर्तित हो रही हैं। लोग अनुभव करने लग गये हैं कि विज्ञान भौतिक सुख-सुविधा प्रदान करने में भले ही समर्थ हो, पर वह मानव की मूलभूत समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता। जब तक जरा एवं मृत्यु हैं, तब तक मानव असुरक्षा का अनुभव अवश्य करेगा। यही नहीं, विज्ञान के भौतिकता केन्द्रित एवं प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण के फलस्वरूप मानव सुख सुविधाओं के होते हुए भी अशान्त हो गया है। विज्ञान की सहायता से चिर-जीवन एवं अखंड सुख का उसका स्वप्न भंग हो गया है। किसी ने ठीक ही कहा है, विज्ञान हमें दीर्घायु कर सकता है, लेकिन जीवन की गहराई धर्म प्रदान करता है। "Science prolongs life, religion deepens it." विज्ञान जीवन वृक्ष को ऊँचा कर सकता है, लेकिन उसकी जड़ों को गहरी नहीं कर सकता और लघु-मूल-विशाल-वृक्ष आखिर कब तक आंधी तूफान का सामना कर सकता है ?

आज हम मानव इतिहास के एक ऐसे संधिक्षण पर खड़े हैं, जब नयी चुनौतियां सामने हैं, तथा मानव को ऐसी नयी शक्तियों एवं समस्याओं का सामना करना है जो पहले कभी भी विद्यमान नहीं थीं। मानव अस्तित्व के एक अपरिहार्य अंग के रूप में धर्म भी धीरे-धीरे विकसित होता रहा है। पहले भय एवं अस्तित्व की समस्या ने धर्म के स्वरूप को प्रभावित किया था। पर अब वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं तकनीकी (Technology) का प्रभाव जीवन पर पड़ रहा है, तथा उनके कारण नयी समस्याएँ पैदा हो गयी हैं। जीवन अत्यधिक द्रुत हो गया है, एवं मानव मन पर असंख्य नये प्रभाव सूचना एवं प्रसारण के नये माध्यमों से एक साथ पड़ने लगे हैं। नये धर्म को इन समस्याओं को सुलझाना होगा। अधिकांश पाश्चात्य वासियों के लिए किसी पुस्तक, पैगम्बर या भगवान में

आस्था का कोई अर्थ नहीं रह गया है। वे स्पष्ट रूप से अपने को नास्तिक कहने में नहीं हिचकते। दूसरी ओर पुरातन धर्म पंथियों का एक वर्ग और अधिक कट्टर हो गया है। धर्म को आधुनिक प्रहारों से सुरक्षित रखने के प्रयास में वे पुरानी आस्थाओं को और अधिक दृढ़ता से पकड़ कर रखने के लिए प्रयत्न शील हैं। उक्त दोनों वर्गों के लिए शान्ति स्वप्न हो गयी है। वैज्ञानिक विचारापन्न किन्तु नास्तिक व्यक्तियों के जीवन में सुविधा तो है पर शान्ति नहीं। कट्टरवादियों के जीवन में धर्म तो है पर वे भी तनाव-शून्य नहीं। किन्तु समाज का एक तीसरा वर्ग भी है, जो इन दोनों वर्गों से पृथक है। वह धर्म तो चाहता है पर पुरातन आस्था मूलक धर्म नहीं। वह विज्ञान तो चाहता है, पर धर्म-विरहित विज्ञान नहीं। सत्य एवं शाश्वत मूल्यों के ऐसे जिज्ञासुओं की संख्या शनैः शनैः बढ़ती जा रही है। यही कारण है कि अमेरिका में प्रमुख धर्मों तथा उनके अधिकृत पंथों के अतिरिक्त लगभग दो हजार ऐसी धार्मिक, आध्यात्मिक संस्थाएँ हैं, जहाँ लोग योग, ध्यान, उपासना आदि सीखने का प्रयत्न कर रहे हैं। ध्यातव्य यह है कि इन संस्थाओं में से अनेकों ने विश्वास को अपनी आधार भूमि के रूप में स्वीकार नहीं किया है।

लगभग एक शताब्दी पूर्व स्वामी विवेकानन्द ने धर्म की एक नयी परिभाषा प्रदान की थी तथा भावी धर्म के स्वरूप के सम्बन्ध में एक स्पष्ट धारणा प्रस्तुत की थी, जो वैज्ञानिकता की कसौटी पर खरा उतरने के साथ ही साथ मानव को सबल एवं स्थिरता प्रदान कर सके। उपर्युक्त विश्लेषण की पृष्ठभूमि में स्वामी विवेकानन्द की धर्म की व्याख्या का महत्व अधिक स्पष्टतर रूप से हृदयंगम किया जा सकेगा। स्वामी जी के अनुसार, "मानव के अन्तर्निहित देवत्व (ब्रह्मत्व) की अभिव्यक्ति ही धर्म है। अंतः प्रकृति एवं बहिः प्रकृति के नियमन के द्वारा इस ब्रह्मत्व को व्यक्त करना ही लक्ष्य है"। अन्यत्र स्वामी जी कहते हैं धर्म अनुभूति का विषय है, "यदि ईश्वर है तो हमें उसे देखना चाहिए। यदि आत्मा है तो उसका अनुभव किया जाना चाहिए।" तात्पर्य यह है कि स्वामी जी ने श्रद्धा व विश्वास के स्थान पर अनुभूति को धर्म का आधार बनाया है। वास्तविक रूप से धार्मिक होने का अर्थ उसे हमारे जीवन एवं चरित्र का अभिन्न अंग बन जाना चाहिए। सुनिश्चित रूप से सुधी पाठक के मन में प्रश्न उठ सकता है कि उक्त अवधारणा की आधार भूमि क्या हो सकती है। प्रत्युत्तर में कहा जा सकता है कि उनके सामने धर्म के मूर्तिमान विग्रह स्वरूप श्री रामकृष्ण का दृष्टांत था, और श्री रामकृष्ण ने परमात्मा की प्रत्यक्षानुभूति की थी। वे ईश्वर के साथ वार्तालाप भी करते थे तथा उनका यह दावा था कि कोई भी व्यक्ति ईश्वर का दर्शन कर सकता है। इसी बात की प्रतिध्वनि हम उपनिषद् में भी पाते हैं जहां एक ऋषि अपनी अनुभूति का मुक्त उद्घोष कर सभी को उसे प्राप्त करने का आह्वान करते हैं :

शृन्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति।
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

अर्थात : ओ अमृत के पुत्रो, तथा जो दिव्य धामों में निवास करते हैं वे भी, सुनो। मैंने अन्धकार से परे उस आदित्य वर्ण महान पुरुष को जान लिया है। उसे जानकर ही मृत्यु का अतिक्रमण किया जा सकता है। कल्याण एवं अमृतत्व का कोई और दूसरा मार्ग नहीं है।

अंध विश्वास व्यक्ति को कट्टर एवं संकीर्ण बना सकता है, किन्तु अनुभूति शान्ति एवं आनन्द का संचार करती है। ऐसा अनुभूतिसंपन्न एक व्यक्ति ही समग्र समाज को उन्नत करने एवं उनमें शांति का संचार करने में समर्थ है। किन्तु तब भी प्रश्न उठता है, क्या विश्वास की कोई उपयोगिता या उपादेयता नहीं ? वस्तुतः स्वामी जी संकीर्ण, अनुभूति-विहीन अंधविश्वास के विरोधी थे। उनका मत था कि ईश्वर के सम्बन्ध में ऐसी संकीर्ण श्रद्धा के बदले आत्म विश्वास अधिक उपयोगी है। आत्म विश्वास के बिना ईश्वरविश्वास सफलीभूत नहीं हो सकता। उनकी एक प्रसिद्ध उक्ति है : पुराना धर्म कहता था कि वह नास्तिक है जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता। नया धर्म कहता है कि वह नास्तिक है जो अपने आप में विश्वास नहीं करता''। हममें सभी शक्तियाँ विद्यमान हैं। शान्ति, सुख, शक्ति आदि जो हम ईश्वर पर आरोपित करते हैं, वह सब प्रत्येक आत्मा में पूर्ण रूप में, पर अव्यक्त रूप में विद्यमान है। बाहर एक साकार ईश्वर की कल्पना इस अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करने का प्रतीक, एक अवलम्बन मात्र है।

(२) धर्म के पुनरुज्जीवन के विषय में स्वामीजी का दूसरा महत्वपूर्ण योगदान है धर्म के अनिवार्य तत्वों को उसके गौण एवं सहायक विषयों से पृथक करना। अन्तः प्रकृति एवं बहिः प्रकृति के नियमन के द्वारा अन्तर्निहित देवत्व को व्यक्त कर मुक्त होना ही धर्म का सार है। स्वामी जी के अनुसार मत मान्तर क्रिया-अनुष्ठान, मन्दिर गिरजा, धर्मशास्त्र ये धर्म के गौण अंग मात्र हैं। अध्यात्मिक जीवन की प्रारंभिक अवस्थाओं में इनकी उपयोगिता है। लेकिन समस्या तब पैदा होती है जब हम इन्हें ही धर्म का सर्वस्व समझ कर सारा जीवन इन्हें पकड़े रहना चाहते हैं। यही नहीं, विभिन्न धर्मों के क्रियाकाण्डों एवं धर्म शास्त्रों में पार्थक्य के फलस्वरूप इन तत्वों को आवश्यकता से अधिक महत्व देना धर्मों के परस्पर संघर्ष का कारण भी हो जाता है।

(३) धर्म के विषय में स्वामी विवेकानन्द का तीसरा महत्वपूर्ण योगदान है, धर्म के साधनों का तर्कसंगत एवं मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण। स्वामीजी ने सभी साधनों को कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, तथा राजयोग में विभक्त किया है। फलाकांक्षा एवं कर्तृत्वाभिमान त्याग कर निष्काम भाव से कर्म करना कर्मयोग कहलाता है। आत्मस्वरूप का विचार ज्ञानयोग की पद्धति है। ज्ञान योग विचार-पथ है, जबकि भक्ति योग प्रेम एवं भावना का मार्ग है। भगवान को पिता, माता पुत्र, बन्धु, स्वामी अथवा पति के रूप में प्रेम करना भक्ति योग का सार है। राज योग में ध्यान की सहायता से चित्तवृत्तियों का निरोध किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति में कर्मप्रवणता, विचारशीलता, एवं भावुकता रहती हैं, अन्तर केवल इनके अनुपात का है। कोई अधिक भावुक होता है तो दूसरा अधिक कर्मठ। किसी में गहन चिन्तन की अधिक क्षमता होती है तो किसी अन्य व्यक्ति के लिए चित्त को एकाग्र कर ध्यान करना सरल होता है। अतः जिस व्यक्ति के मानसिक गठन में जिस क्षमता विशेष का प्राधान्य होगा, उस व्यक्ति के लिए उसके अनुरूप साधना पद्धति अधिक उपयुक्त होगी। भावुक व्यक्ति के लिए भक्ति योग, कर्मठ व्यक्ति के लिए कर्म योग, बुद्धिमान के लिए ज्ञान योग एवं मन के अनुसंधित्सु के लिए राजयोग उपयोगी होंगे।

एक बात और है। ऐसा नहीं कि किसी व्यक्ति में केवल एक ही मानसिक क्षमता होती है, दूसरी नहीं। सभी में सभी प्रकार की क्षमताएं रहती हैं, भले ही प्राधान्य किसी एक का हो। अतः चारों योगों का समन्वय तथा संतुलित साधन सर्वश्रेष्ठ विकल्प है। स्वामी विवेकानन्द ने इसी पर सबसे

अधिक बल दिया है, और धर्म की साधना के विषय में चारों योगों का यह समन्वय उनका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है।

(४) धर्म जीवन प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तिगत व्यापार है। अभिरुचि की भिन्नता के कारण धर्म में भी विविधता या वैविध्य होता है एत्र उनमें अनेकरूपता होती है। जिस प्रकार प्रत्येक के शरीर की एक विशिष्ट बनावट होती है, उसी तरह मन की भी। तथा उसी के अनुरूप धर्म मी अलग-अलग होने चाहिए। प्रत्येक को अपने लिए धर्म का चयन करने की स्वाधीनता होनी चाहिए। स्वामी विवेकानन्द तो कहते हैं कि धर्मों एवं पंथों के जितने विभाजन हों उतना अच्छा है, जिससे अधिकाधिक लोग अपनी रुचि के अनुरूप धर्म का चयन कर सकें, यहाँ तक कि यदि जितने व्यक्ति है, यदि उतने ही पंथ हो तो कोई बुराई नहीं है।

(५) लेकिन धर्म के विषय में स्वामी जी का सबसे महत्वपूर्ण योगदान है दैनन्दिन जीवन के साथ उसका समन्वय जिसे "व्यावहारिक जीवन में वेदान्त" को संज्ञा दी जाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार जीवन की सभी क्रियाओं को, आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति की साधना में परिणत किया जा सकता है। हमारे कर्मों को धार्मिक एवं सांसारिक इन दो वर्गों में विभक्त करना स्वामीजी के अनुसार एक भूल है। किसी देवी देवता की मूर्ति अथवा चित्र मात्र ही ईश्वर का प्रतीक नहीं है। जीवन्त मानव भगवान का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है, तथा उसकी सेवा ही भगवान की सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोत्कृष्ट उपासना है। इस मानव रूपी महेश्वर की आध्यात्मिक, बौद्धिक तथा भौतिक सेवा के लिए किया गया प्रत्येक कार्य, कार्य न होकर आध्यात्मिक साधना में परिणत हो जाता है। रोगी रूपी नारायण को औषधि खिलाना एवं पथ्यादि प्रदान करना, चिन्ताग्रस्त गृहस्थ रूपी नारायण को सांत्वना प्रदान करना एवं मुमुक्षु रूपी नारायण को साधना के रहस्य से अवगत कराना आदि सभी कार्य पूजा नहीं तो और क्या है? इस तरह से हमारे जीवन का प्रत्येक कार्य प्रभु की आराधना में परिणत किया जा सकता है।

इस तरह स्वामी विवेकानन्द की धर्म की परिभाषा एवं व्याख्या ने एक नये युगोपयोगी धर्म को अवतरित किया है। यही नया धर्म भविष्य का नया धर्म होगा तथा असंख्य नर-नारियों को शान्ति प्रदान करने के साथ ही साथ उनके जीवन को सार्थकता प्रदान करेगा।

"धर्म को लेकर कभी विवाद न करो। धर्म सम्बन्धी सारे विवाद और झगड़े केवल यही दर्शाते हैं कि वहाँ आध्यात्मिकता का अभाव है। धर्म सम्बन्धी झगड़े सदैव खोखली और असार बातों पर ही होते हैं। जब पवित्रता—आध्यात्मिकता—आत्मा को छोड़कर चली जाती है, तभी शुरू झगड़े—विवाद आरम्भ होते हैं, उसके पूर्व नहीं।"

—स्वामी विवेकानन्द

भगिनी निवेदिता

स्वामी मुख्यानन्द पुरी
बेलुड़ मठ

पराधीन भारत की सेवा में विदेशों के कई नर-नारियों ने अपना जीवन उत्सर्गित किया। इन सबमें शीर्ष स्थान मिस मार्गरेट एलिजाबेथ नोबल का है, जो कालान्तर में भगिनी निवेदिता के नाम से जगद्विख्यात हुई। मूर्तिमान-भारतवर्ष स्वामी विवेकानन्द ने भारतमाता की वेदी पर निवेदन कर उसका नाम निवेदिता रखा और निवेदिता ने अपने तन-मन-प्राण भारतमाता के चरणों में अर्पित कर अपना नाम सार्थक किया। निवेदिता का अनोखा-पन यह था कि जहाँ अन्य भारत प्रेमी विदेशियों ने अपने विदेशी व्यक्तित्व को कायम रखकर भारत की सेवा की, निवेदिता पूर्णतया भारत से घुलमिल गयी। वह तो भारत को अपना देश तथा भारत की जनता को अपना स्वजन मानती थी।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है, 'वह जब "हमारे लोग" शब्द का प्रयोग करती, तो उसमें इतनी आत्मीयता भरी रहती कि हमारे या अन्य किसी के कहने से कर्ण को वैसा स्पर्श न होता' और क्यों नहीं, स्वामी विवेकानन्दजी का मतवाला भारत-प्रेम उसे विरासत में प्राप्त जो हुआ था। वह उनकी प्रधान शिष्या तो थी ही, पर साथ ही यह भी सत्य था कि स्वामीजी की आत्मा उनके देहत्याग के बाद निवेदिता के द्वारा ही अभिव्यक्त हो रही थी। निवेदिता ने स्वयं कहा है, 'वे मरे नहीं, वे सदा हमारे साथ हैं, मुझे उनके जाने का दुःख तक नहीं है; मैं केवल कर्मरत होना चाहती हूँ।'

और वह सारा जीवन भारतमाता की सेवा का व्रत धारण किये रही। भारतमाता के सपूतों को उठाकर, उनमें अदम्य शक्ति जगाकर, वह अन्त में जब सो गयी, तो जनता ने दार्जिलिंग में उसकी समाधि पर इन वचनों को अंकित कर अपनी कृतज्ञता जतायी—

'इस स्थान पर रामकृष्ण—विवेकानन्द की अनुगता भगिनी निवेदिता की अस्थियाँ शान्तिलीन हैं, जिसने भारत के लिए अपना सर्वस्व अर्पित किया।"

मार्गरेट का जन्म २८-१०-१९६७ को आयरलैंड के एक धर्मभीरु सदाचारी परिवार में हुआ था। उसके पूर्वज स्काटलैंड के थे। करीब पाँच सदियों से आयर-लेंड में बसे हुए थे। उसके पिता सैम्युएल रिचमाँड नोबल इंग्लैंड आकर डेवेनशायर के चर्च में पादरी का काम करने लगे। वे बड़े धर्मात्मा थे तथा गरीबों की सेवा में रत रहते थे। उनकी ३४ साल की उम्र में ही मृत्यु हो गयी। मार्गरेट ने अपनी माँ मेरी इसाबेल के साथ रहकर आयर-लैंड में ही अपना स्कूल-कॉलेज का विद्याभ्यास पूरा किया। उसने संगीत कला तथा भौतिक विज्ञान में शिक्षा प्राप्त की। १७ साल की आयु में इंग्लैंड आकर वह कई स्थानों पर सात साल तक अध्यापिका का काम करती रही। इस बीच उसने पेस्टालाजी की नयी शिक्षण-पद्धति अपना ली तथा उस पद्धति से नाना प्रकार के प्रयोग किये। १८९२ में उसने स्वयं अपना एक स्कूल लन्दन के परिसर विम्बलडन में खोल उसे 'रस्किन स्कूल' के नाम से चलाया, जो बहुत ख्यातिप्राप्त हुआ। उसने शीघ्र ही विद्वत्समाज में एक प्रगतिशील

शिक्षाविद के रूप में अपना स्थान बना लिया।

मार्गरेट बचपन से ही बड़ी कुशाग्रबुद्धि तेजस्वी लड़की थी। एक बार भारत से आये एक पादरी मित्र ने उसके पिताजी से कहा कि जब वह बड़ी होगी भारत जाकर वहाँ की जनता की सेवा करेगी। मार्गरेट की जीवनधारा क्रमशः इसी तरफ मुड़ गयी। वह जैसे-जैसे बड़ी होती गयी, उसका व्यक्तित्व निखरने लगा। उसका कद मध्यम ऊँचाई का, बाल सुनहले धूसर, आँखें नीली, तन दमकता तथा मुख मन्दस्मित था। बचपन की निष्ठावान् विद्यार्थिनी अब एक ध्येयनिष्ठ, स्वबुद्धिचालित, आकर्षक तथा प्रभावशाली युवती बन गयी थी। वह स्वाभिमानी, उदार, फुर्तीली तथा दृढ़ता से भरी थी। वह अपने ज्ञान को विद्यार्थियों को देकर उनमें उत्साह भर सकती थी। वह मातापिता के समान धर्मनिष्ठ तथा सेवापरायण थी। ईसामसीह के प्रति उसका प्रेम था, जिन्होंने जनता के लिए अपने प्राण निछावर किये थे।

लेकिन प्रखर बुद्धिसम्पन्न मार्गरेट के मन में आधुनिकज्ञान-विज्ञान के कारण नाना प्रकार की विचारतरंगें उमड़ने लगीं। उसे चर्च की कट्टरता तथा संकीर्णता न भायी। वह सत्य तथा भगवत्-तत्व को विचार तथा युक्ति की कसौटी पर कसकर देखना चाहती थी, न कि केवल कर्मकाण्ड पर। अपने को चर्च के पादरियों के हाथ सौंपना उसे पसन्द नहीं था। जैसे जैसे उसकी सत्यनिष्ठा बढ़ती गयी, धीरे धीरे उसकी चर्च के प्रति आस्था घटती गयी। उसकी आत्मा सत्यवस्तु को जानने के लिए तड़पने लगी। उसे यह लगने लगा कि केवल कुछ धार्मिक विश्वासों पर ही धर्म निर्भर नहीं करता, अपितु सत्य के साक्षात्कार पर, जीवन में सत्य के उतारने पर।

यह एक नैसर्गिक नियम है कि हम जिस चीज को तीव्र हृदय से चाहते हैं, वह हमें प्राप्त होकर ही रहेगी। मार्गरेट को बुद्ध की जीवनी पढ़ने को मिली। भगवान् बुद्ध का त्यागमय, करुणापूर्ण जीवन तथा उनके उदात्त विचारों ने उसे प्रभावित किया। ईसा के दिव्य जीवन का प्रतिबिम्ब बुद्ध में नजर आया। बुद्ध की विचारधारा उसे अधिक युक्तिसंगत तथा सटीक लगी। लेकिन फिर भी उसको तृप्ति नहीं हुई। उसके मन के संशय दूर नहीं हुए। उसकी आत्मा को शान्ति नहीं मिली। जब मार्गरेट इस अवस्था में से गुजर रही थी तथा सत्य की खोज में लालायित होकर प्रकाश के लिए सर्वत्र ढूँढ़ रही थी, उसी समय विवेकानन्दरूपी भास्कर लन्दन के गगन पर उदित हुआ। 'अमेरिका से आये हुए एक महान् हिन्दू योगी' की खबर उसे मिली। यह हिन्दू योगी थे—भारत पुत्र स्वामी विवेकानन्द, जिन्होंने १८९३ में शिकागो विश्व धर्म सम्मेलन में भारत की स्वर्णिम धर्म-पताका सबसे ऊँची फहरायी थी, तथा जो अमेरिका की जनता को अपनी ओजस्वी वाणी से मन्त्रमुग्ध कर अब यूरोप की जनता के उत्साह पूर्ण आह्वान पर अमेरिका से आये हुए थे।

१८९५ का नवम्बर महीना था। लेडी इसाबेल मार्गेसन के घर पर विवेकानन्द की वाणी को सुनने के लिए लोग एकत्र हुए थे। मार्गरेट भी आमंत्रित होकर आयी हुई थी। स्वामीजी को देखा, सुना। उसके हृदय में कुछ अनोखी हलचल हुई। लेकिन स्वाभिमानी मन ऊपर से इसे मानने को राजी नहीं था। वह बोल उठा—'इसमें नूतन क्या है? लेकिन घर जाने पर अन्तर्मन कहने लगा, 'नहीं, इसमें कुछ अनोखी विशेषता है।' उसके पैर अपने आप उसे स्वामीजी के प्रवचन सुनने ले जाने लगे। अब वह बड़े गौर और निष्ठा से सुनने लगी। उनके विचारों के साथ उसके अपने संचित विचार तथा स्वबुद्धि पर अभिमान का अन्तर्द्वन्द्व जारी रहा। यद्यपि

मार्गरेट दिनोंदिन स्वामीजी के दिव्य जीवन तथा उदात्त विचारों से अधिकाधिक प्रभावित होती चली, फिर भी अपने को पूर्णतया सौंपने को तैयार नहीं थी।

लेकिन आखिर वह दिन आया। मार्गरेट ने पूरे साल तक निरीक्षण कर अनुभव किया कि स्वामीजी कोई एक महान् वाग्मी धर्मोपदेशक ही नहीं बल्कि वे एक त्यागी महापुरुष हैं, जो जगत कल्याण के लिए, लोगों के दुःख दूर करने के लिए उदित विवेक-भास्कर हैं। स्वार्थ, लोभ इत्यादि दुर्गुणों को दूर करके जनता में परस्पर सौहार्द तथा सेवाभाव को जाग्रत् करने आये हैं।' उनके अस्त्र थे भगवान् में परमभक्ति, लोकप्रेम, त्याग, तपस्या एवं सेवा। स्वामीजी एक दिन प्रवचन के बीच स्फुरित होकर गरज उठे—

"जगत् को अब ऐसे दस-बीस नर-नारियों की आवश्यकता है, जो सर्वस्व त्याग कर रास्ते पर खड़े होकर हाथ उठाये कह सकते हैं कि 'भगवान ही हमारा सर्वस्व है'। क्या कोई जाने को तैयार है ?" मार्गरेट की हृदय-वीणा बज उठी : मैं जाऊँगी। अवश्य जाऊँगी। जनता-जनार्दन की सेवा में अपना सर्वस्व न्योछावर कर दूँगी।' स्वामीजी ने मार्गरेट का भाव ताड़ लिया। एक पत्र में उन्होंने मार्गरेट को लिखा—'जगत् धीरतम तथा अत्युतम व्यक्तियों का बलिदान चाहता है—बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय। प्रम तथा करुणा से प्रेरित सैकड़ों बुद्धों की अब जगत को आवश्यकता है।' फिर और एक बार प्रवचन के बीच मार्गरेट की तरफ मुड़कर कहा—"मेरे देश की महिलाओं की उन्नति के लिए मेरी कुछ योजनाएँ हैं। मुझे लगता है कि तुम इस कार्य में मुझे बहुत सहायक सिद्ध होगी।" मार्गरेट का मन सहसा आलोकित होकर शान्ति से भर उठा। अन्धकार हट गया। हृदय आनन्द से पुलकित हुआ। सत्य की छटाओं ने उसके सर्वांगों को उज्ज्वल कर दिया : तन तेजोयुक्त हुआ। उसके जीवन की दिशा स्पष्ट हो उठी। अन्तर्द्वन्द्व मिट गया। उसने तत्काल भारत माता की सेवा के लिए अपने को पूर्णतया समर्पित कर दिया।

स्वामीजी दिसम्बर १८९६ में भारत के लिए रवाना हुए। एक पत्र में मार्गरेट को भारत की स्थिति के बारे में स्पष्ट किया—"यहाँ की गरीबी, गन्दगी, सामाजिक कुसंस्कार, पाश्चात्य महिला होने के नाते उसके प्रति स्वाभाविक अविश्वास, गोरे शासकों की भी संशय भरी दृष्टि तथा धिक्कार, यहाँ की असहनीय गर्मी—इन सब कठिनाइयों का सामना करते हुए, कष्ट भोगते हुए क्या तुम भारत माता की सेवा हेतु अपने को कटिबद्ध हो ?" स्वामीजी ने लिखा—मैं तो आमरण तुम्हें साथ दूँगा। चाहे तुम आओ या नहीं भी आओ, वेदान्त का पुरस्कार करो या तिरस्कार। 'मरद की बात, हाथी के दाँत।' वे आगे बढ़कर कभी पीछे नहीं हटते।"

मार्गरेट का निश्चय दृढ़ था। उसका जीवन अन्दर से बदल चुका था। २८ जनवरी १८९८ को वह भारत आयी। कलकत्ता के नौ-घाट पर स्वामीजी ने स्वयं उसका स्वागत किया। एक सप्ताह चौरंगी में कुछ अंग्रेज परिचितों के साथ रह नगर के हिन्दू मुहल्लों का निरीक्षण किया। दो-चार दिनों में ही स्वामीजी की और दो अमरीकी शिष्याएँ भारत आयीं। अब तीनों गगा किनारे बेलुड़ मठ के अतिथि ह में रहन लगीं। स्वामीजी नित्यप्रति उनको भारत का इतिहास, संस्कृति, धर्म-दर्शन, आचार, विचार, सामाजिक जीवन, पारिवारिक जीवन, भारतीय महीयसी महिलाएँ इत्यादि विषयों के बारे में सुनाते रहे। मार्गरेट ने अपने को भारत-महिला के ढाँचे में रखने का आन्तरिक निश्चय किया। निश्चय

करना तो आसान था। लेकिन अपने अंग्रेजी व्यक्तित्व को त्यागकर भारतीय व्यक्तित्व को अपनाना उतना सहज नहीं था। स्वामीजी जानते थे कि सेवक जब तक सेव्य के साथ तन्मय नहीं हो पाता, तब तक वह ठीक ठीक सेवा नहीं कर सकता। सबसे बड़ा और कठिन त्याग है पुराने व्यक्तित्व का, अपनी अहमिका का। इसकी संसिद्धि के लिए काफी समय तथा परिश्रम लगता है और नया व्यक्तित्व सधने तक टूटते हुए पुराने व्यक्तित्व के कारण मर्मान्तक वेदना तथा निराशा को झेलना भी पड़ता है। अब स्वामीजी अपनी परम शिष्या के इस परिवर्तन के कार्य में लग गये।

मार्च ११, १८९८ के दिन स्वामीजी ने एक सभा बुलाकर मार्गरेट नोबल का परिचय कराते हुए कहा "यह इंग्लैंड से भारत के लिए और एक देन है, जिससे हम बहुत कुछ पाने की अपेक्षा कर सकते हैं।" उत्तर में मार्गरेट ने 'इंग्लैंड पर भारत के आध्यात्मिक विचारों का प्रभाव' विषय पर भाषण दिया तथा अपनी ओजस्वी वाग्धारा से सभी का मन हर लिया। वह स्वयं अपने भाषण का मूर्तिमान दृष्टांत थी।

मार्च १७ को स्वामीजी ने उसे रामकृष्ण-संघ-जननी परमाराध्या श्री सारदा माता के दर्शन करवाये। वह सारदा देवी के प्रेममय, मातृस्नेह-पूर्ण, शान्त, निर्मल, देवीतुल्य व्यक्तित्व से बड़ी प्रसन्न हुई। माँ की वह 'खुकी' (शिशु) बन गयी और बड़ी आश्वस्त हुई। भारतमाता की सुपुत्री बन गयी।

मार्गरेट के मन की उचित अवस्था देख स्वामीजी ने निश्चय किया कि उसे भारतमाता के चरणों में निवेदित कर दें। मार्च २८, १८९८ शुक्रवार के दिन स्वामीजी ने उसे मन्त्रपूत करके दीक्षान्वित किया। शुभाशीर्वाद के उपलक्ष में उसके नतमस्तक पर हाथ रखा। वह भारतसेवा-व्रतधारिणी 'निवेदिता' में परिणत हुई। मार्गरेट सदा के लिए विलुप्त हो गयी।

शीघ्र ही स्वामीजी उसे अपनी अन्य महिला-शिष्याओं के साथ देव-दर्शन के लिए ले चले, जिससे वह भारत और उसकी जनता से परिचित हो, जिसकी सेवा उसे करनी थी। हिमालय का भ्रमण हुआ। भारत के मुख्य तीर्थस्थानों की यात्रा की। प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानों का निरीक्षण किया। प्रवास में बनारस, दिल्ली, आगरा, अलमोड़ा, कश्मीर, अमरनाथ सभी सम्मिलित हुए। स्वामीजी उनके बारे में स्फूर्तिदायक वर्णन करते। निवेदिता के कण कण में, रोम रोम में भारत भर गया। वह अब परम तपस्विनी भगिनी निवेदिता बन गयी। यात्रा से लौटते ही उसने स्वामीजी के महदुददेश्य की पूर्ति के लिए, भारत की नारी-शक्ति के जागरण के लिए सर्वप्रथम नवम्बर १८९८ में कलकत्ता के बाग-बाजार मोहल्ले में, श्री माँ के निवासस्थान के निकट ही, एक लड़कियों की पाठशाला खोल दी। अपने कार्य के शुभ श्रीगणेश के लिए श्री माँ का आशीर्वाद लिया। उसे चलाने में उसे बहुत प्रकार की सामाजिक तथा आर्थिक कठिनाइयों को झेलना पड़ा। समाज कट्टर था। स्त्री-शिक्षा की प्रथा नयी थी। फिर वह ठहरी गोरी परदेशी। लेकिन वह धीरज नहीं हारी। आगे चलकर स्वामीजी की अमरीकी शिष्या भगिनी क्रिस्टीन ने उसे स्कूल चलाने में अपना सहयोग दिया। उसकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निवेदिता ने अमेरिका, इंग्लैड आदि विदेशों में दौरा लगाया और भारत के लोग, उसकी संस्कृति, स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता, अपनी पाठशाला इत्यादि विषयों पर ओजस्वी भाषण दे वहाँ के लोगों की नैतिक तथा आर्थिक सहानुभूति प्राप्त की। साथ ही मिशनरियों के द्वारा लोगों में जो भारत के बारे में भूल धारणाएँ प्रसारित की गयी थीं उनका भी

निरसन किया। उसके फुर्तीले भाषणों को सुनकर वहाँ के पत्रकार तक प्रभावित हुए। समाचार-पत्रों में 'भारत की चैम्पियन' के रूप में उसका वर्णन किया गया।

पश्चिम से लौटने के बाद निवेदिता ने कुछ दिन श्री सारदा माँ तथा श्रीरामकृष्णदेव की अन्य शिष्याओं के साथ बागबाजार के उनके निवास-स्थल पर बिताये और हिन्दू पारिवारिक जीवन का अनुभव प्राप्त किया। वह भारतीय महिलाओं की सादगी तथा संयत व्यवहार, कोमलता तथा प्रेमभाव, कार्यदक्षता, घरों में परस्पर के प्रति लगन इत्यादि गुणों को देख बड़ी प्रभावित हुई। अपनी पुस्तकों में निवेदिता ने पाश्चात्य जगत् के लिए भारतीय पारिवारिक जीवन का सुन्दर चित्र खींचा है। ('Web of Indian Life' पुस्तक देखिए।)

निवेदिता ने अपनी पाठशाला को राष्ट्रीय ढाँचे पर गढ़ा। वह चाहती थी कि भारत की लड़कियाँ श्री सारदादेवी के आदर्श जीवन के आलोक में एक बार फिर से प्राचीन युग की गार्गी, मैत्रेयी, सावित्री जैसी महती नारियों के समान महान बनें और देश को उज्ज्वल करें। कालक्रम में उसकी शाला सर्वतोमुखी प्रवर्धमान होकर 'भगिनी निवेदिता महिला विद्यालय' के नाम से एक आलोक स्तम्भ बन गयी। प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जदुनाथ सरकार ने लिखा है कि 'निवेदिता की पाठशाला हम सब का एक आदर्श ज्योति-केन्द्र बन गयी थी।'

स्वामीजी जून १८९९ में जब द्वितीय बार पश्चिम की यात्रा पर गये, तब निवेदिता ने भी अपने स्कूल के धनसंग्रह के लिए उनके साथ ही प्रवास किया था और कुछ समय उनके साथ ही थी। उसके दौरान स्वामीजी ने उनमें भारत की महत्ता की भावना कूटकूटकर भर दी थी। उन्होंने उसको अंग्रेजी में एक आशीर्वाद-गीत भी भेजा था, जिसका भावानुवाद यों होगा—

> माँ का हृदय, वीर की दृढ़ता,
> मलय-पवन की मधुता
> ज्वलन्त आर्य-वेदी की पावन
> शक्ति और मोहकता
> ये वैभव सब, अन्य और जो
> जन के स्वप्न बने हों—
> तुम्हें सहज ही आज प्राप्त हों
> (निश्छल भाव सने हों।)
> भारत के भावी पुत्रों की
> गूँजे तुममें वाणी
> मित्र, सेविका और बनो तुम
> मंगलमय कल्याणी।

स्वामीजी के देहत्याग के बाद निवेदिता ९ साल तक भारत देश की सेवा करती रही। वह भारतीय जीवन के सर्वतोमुखी उत्थान के लिए कटिबद्ध वीर संन्यासिनी हुई। केवल अपने अन्तर को ही नहीं वरन् अपनी बाह्य वेशभूषा तथा बोल-चाल में भी उसने यथोचित परिवर्तन कर लिया था। वह एक लम्बा सा चोगा पहनती, जिस पर कटिवस्त्र बाँधती और गले में त्याग-वैराग्य का प्रतीक रूद्राक्ष की माला। अपने लोगों को सदा वह 'अपने भारत' के बारे में स्फूर्ति से बताती। अब वह शिक्षण-क्षेत्र के अलावा सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में भी कूद पड़ी। भारत की कला, संस्कृति तथा नैतिकता के उत्थान के लिए वह दृढ़व्रत हुई। अपने शक्तिशाली भाषणों, स्फूर्तिदायक लेखों तथा विचारगर्भित आदर्शसृजक पुस्तकों के द्वारा उसने भारत की जनता को झकझोर कर जाग्रत किया। सरकार से वह टकरायी। वह किसी भी हालत में विदेशी अधिकारी या गोरे लोगों द्वारा भारत का अपमान नहीं सह सकती थी। उत्तेजित सिंहनी के समान गरज उठती थी।

उनके लिए भारत का सुख-दुख अपना सुख-दुख था। भारत का अपमान अपना अपमान था। भारत का गौरव अपना गौरव था। क्या वह विवेकानन्द की वीर शिष्या, भारतमाता के चरण-तल में समर्पित निवेदिता नहीं थी ?

अचिरात् निवेदिता का व्यक्तित्व सभी के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया। क्या राजनीतिज्ञ, क्या समाज सुधारक, क्या कलाविद्, क्या वैज्ञानिक, क्या शिक्षाशास्त्री, क्या ऐतिहासिक, क्या अर्थ-शास्त्री, क्या उद्योगपति, क्या प्रौढ़, क्या नवयुवक-युवतियाँ—उस समय के देश के सभी नामी लोग उसके देशप्रेमपूर्ण, स्वाभिमानयुक्त, ओजस्वी विचार धारा से प्रभावित हो अपने क्षेत्र में उससे निर्देशन पाने के लिए उसके पास हमेशा आया करते। उसका निवास उन सबके परस्पर मिलने का केन्द्रस्थान बन गया। वह सबको अपनाती, अपने अविराम आदर्श जीवन से उनमें उत्साह भर-कर अनुप्राणित करती। देश को स्वाधीन बनाकर, उसकी प्राचीन गरिमा को सर्वतोमुखी बढ़ाकर फिर से भारतमाता को 'श्रीमत् सिंहासनेश्वरी' बनाने के लिए प्रोत्साहन देती। निवेदिता का नाम एक मंत्र बन गया। सरकार के उच्च अधिकारी भी उसकी कद्र करने लगे। उस स्वार्थहीन, सेवा-परायण, तेजोमय त्याग मूर्ति का सम्मान किये बिना भला कौन रह सकता था ? लेकिन इतना बड़ा स्थान प्राप्त करने पर भी वह सदा भारत की क्रीत दासी के समान ही रही। उसने स्वयं को पीछे रखकर देश की जनता को, देश के कुशल नर नारियों को सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ाया। देश की एकता तथा महानता का गीत गाया।

इस प्रकार देश की सेवा में तल्लीन निवेदिता ने १३ अक्टूबर, १९११ को दार्जिलिंग में अपना शरीर त्याग दिया। अन्तकाल में भारतमाता का उज्ज्वल भविष्य चित्र उसके मनश्चक्षु के सामने उभर आया। माँ के चरणों में नतमस्तक हो उसने निरुपाधि में अपनी आँखें मूँद लीं। देश शोकाकुल हुआ। जनता ने उसके अदभुत जीवन का स्मरण कर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। उनमें से कुछ वाक पुष्प यहाँ उद्धृत करते हुए हम भी निवेदिता की पुण्य स्मृति में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें।

उच्चकोटि के राजनीतिक नेता गोपालकृष्ण गोखले ने कहा—"वह भारत का आह्वान सुनकर हमारे बीच आयी। वह आयी भारत से मोहित होकर, वह भारतमाता को अपने हृदय की पूजा समर्पित करने आयी।" हमारे सामने जो महत्काय हैं, उसमें भारत के पुत्र-पुत्रियों के बीच अपना स्थान लेने आयी।"

देशभक्त क्रान्तिकारी रासबिहारी घोष ने कहा—"एक बात मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि आज यदि हम जागृत राष्ट्रीय जीवन की भावना से प्रेरित हैं, तो इसमें निवेदिता की वाणी का श्रेय कोई कम दर्जे का नहीं है। . . . निवेदिता ने भारत की शुष्क हड्डियों को अनुप्राणित किया।

महात्मा गाँधी ने कहा—"मैं उसका हिन्दूधर्म के प्रति जो असीम प्रेमप्रवाह था उसका बखान बिना किये नहीं रह सकता।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा—"निवेदिता हमारे गौरव की पात्री इसलिए नहीं है कि वह एक हिन्दू थी बल्कि इसलिए कि वह महान थी। हम उसे न केवल इसलिए सम्मान के योग्य समझते हैं कि वह हमारे जैसी थी, बल्कि इसलिए कि वह हम लोगों से महत्तर थी।"

(विवेक ज्योति, रायपुरके सौजन्य से)

सावरकर बन्धुओं के जीवन में श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द

—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

गणेश, विनायक और नारायण—ते तीनों भाई महाराष्ट्र में 'सावरकर-बन्धु' के रूप में विख्यात् हैं। तीनों ने ही विदेशी शासन के विरुद्ध क्रान्तिकारी आन्दोलन, हिन्दू समाज के सुधार व संगठन तथा साहित्यिक क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान किया है। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं विनायक दामोदर सावरकर, जो स्वातंत्र्यवीर अथवा केवल 'वीर सावरकर' के रूप में भी सुपरिचित हैं। इनका चरित्र अल्पाधिक सर्वविदित है तथापि तीनों भाइयों के जीवन तथा कार्य की एक लघु झाँकी यहाँ दे लेना अनुचित न होगा।

नासिक जिले के भगूर ग्राम में २८ मई १८८३ ई० को विनायक का जन्म हुआ। जब वे नौ वर्ष के थे तभी उनकी माता ने परलोकगमन किया। ग्यारह वर्ष की आयु में वे शिक्षा पाने को नासिक गये। वहीं पर १९०० ई० में, अपनी किशोरावस्था में ही उन्होंने 'मित्रमेला' नामक एक संस्था का गठन किया। इस संगठन का उद्देश्य था—अपने सदस्यों का चरित्रनिर्माण करना तथा देश भक्ति, स्वाधीनता और आत्म बलिदान के भावों में उन्हें अनुप्राणित करना। १९०१ ई० में विनायक ने मैट्रिक की परीक्षा पास की और उसी वर्ष उनका विवाह भी हो गया। तदुपरान्त वे पूना जाकर वहाँ के फर्गुसन कॉलेज में आगे की पढ़ाई करने लगे। यहाँ भी उन्होंने 'मित्रमेला' गठित किया। यह क्रमशः बड़ी लोक प्रिय हुई और इसकी शाखाओं सदस्यों की संख्या दिन पर दिन बढ़ने लगी। १९०५ ई० में बी० ए० की पढ़ाई करते समय ही उन्होंने लोकमान्य तिलक को अध्यक्ष बनाकर विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आन्दोलन चलाया तथा विदेशी वस्त्रों की होली जलायी। उनके इस कृत्य पर उन्हें कालेज की ओर से दण्डित भी किया गया। उसी वर्ष बी० ए० की परीक्षा पास कर लेने के पश्चात् उन्होंने विभिन्न स्थानों पर कार्यरत अपनी समस्त संस्थाओं को एक सूत्र में पिरोने हेतु एक गुप्त सभा का आयोजन किया, जिसमें भाग लेने दो सौ प्रतिनिधि आये थे। इस सभा में उन्होंने अपनी संस्था को अखिल भारतीय रूप देते हुए उसे 'अभिनव भारत' का अभिनव नाम दिया। इसी के तत्त्वावधान में भ्रमण करते हुए अब वे जगह-जगह व्याख्यान देने तथा प्रचार का कार्य करने लगे। सावरकर की इन गतिविधियों से अंग्रेज सरकार भी बेखबर नहीं थी और अब वह उन्हे राजद्रोही मानकर उनकी गिरफ्तारी का विचार करने लगी थी।

इसी काल में विनायक को पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा की ओर से छात्रवृत्ति की स्वीकृति मिली और वे कानून का अध्ययन करने ९ जून १९०६ ई० को इंगलैण्ड के लिए रवाना हुए। परन्तु प्रस्थान करने के पूर्व वे अपनी अनुपस्थिति के दौरान 'अभिनव भारत' के सुचारु रूप से परिचालन की व्यवस्था करते गये। लन्दन में श्यामजी कृष्ण वर्मा ने ''इण्डिया हाउस' नामक एक संस्था स्थापित की थी तथा उसकी ओर से कुछ पत्र-पत्रिकाएँ भी चला रहे थे। वहाँ पहुँच कर विनायक अपनी पढ़ाई के साथ ही साथ इस संस्था की गतिविधियों में भाग लेने लगे। वे इण्डिया हाउस में व्याख्यान देते एवं वहाँ की

पत्रिकाओं में लेख लिखते। कुछ काल बाद इस संस्था की व्यवस्था का पूरा भार उन्हीं के कन्धों पर आ पड़ा। वे छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ लिखकर इण्डिया हाउस की ओर से लन्दन में वितरण कराया करते थे। १९०७ ई० में उन्होंने स्वाधीनता के प्रथम युद्ध की स्वर्णजयन्ती मनाने का आयोजन किया। इस अवसर पर उन्होंने एक बृहदाकार ग्रन्थ भी लिखा, जो बाद में '१८५७ का स्वातंत्र्य समर' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इंगलैण्ड में अपने 'अभिनव भारत' की शाखा प्रारम्भ करने के पश्चात् विनायक ने क्रमशः फ्रांस और जर्मनी में भी इसकी शाखाएँ खोलीं। कुछ युवकों को उन्होंने बम बनाने की कला में प्रशिक्षण लने हेतु रूस भेजा, परन्तु उसके पहले फ्रांस में ही उन लोगों की एक रूसी युवक के साथ भेंट हो गयी। उक्त युवक ने इन लोगों को बम बनाने का तरीका सिखाया और उस विषय की एक पुस्तक भी प्रदान की। वह पुस्तक लन्दन में लाकर पुनर्मुद्रित करायी गयी तथा इंगलैंड व फ्रांस के सभी सदस्यों के बीच वितरित कर दी गयी। सबने प्रायोगिक तौर पर बम बनाना भी सीख लिया। सावरकर अपना क्रान्तिकारी साहित्य, बम-निर्माण की विधि तथा पिस्तौल आदि गुप्त रूप से भारत भेजने की व्यवस्था में भी लगे हुए थे। खूफिया विभाग को इसका पता चला और भारत में गिरफ्तारियों और हत्या का दौर आरम्भ हुआ। उनके अन्य दोनों भाई कैद कर लिये गये और उनके नाम भी वारण्ट निकल चुका था। पेरिस से लौटते समय लन्दन के रेलवे स्टेशन पर ही उन्हें पकड़कर मुकदमा चलाने को भारत की ओर रवाना कर दिया। मार्ग में जहाज जब मार्सेल्स के बन्दरगाह से आगे बढ़ा तो वे पहरेदारों की नजर बचाकर समुद्र में कूद पड़े और पीछे से हो रही गोलियों के बौछार की परवाह न करते हुए तैरकर सागर तट तक जा पहुँचे, परन्तु दुर्भाग्यवश वे पुनः पकड़ में आ गये और बंदी हालत में भारत पहुँचे। बम्बई के उच्च न्यायालय में उन पर डेढ़ महीने तक मुकदमा चलता रहा और २३ दिसम्बर १९१० ई० को न्यायाधीशों ने अपना फैसला सुना दिया। उन पर तीन गम्भीर अपराध प्रमाणित हुए थे, जिनके दण्डस्वरूप उन्हें दो आजीवन कारावास तथा एक नजरबन्दी की सजा दी गयी थी। कुल मिलाकर उन्हें पचास वर्ष कठोर कारावास में बिताने थे और उनकी सारी सम्पत्ति भी जब्त कर ली गयी।

कुछ काल तक बम्बई के डाँगरी और ठाणे कारागार में रखने के बाद सरकार ने उन्हें अन्दमान भेज दिया। १९११ से १९२४ ई० तक का काल अन्दमान के कारागार में बिताने के बाद उन्हें मुक्त कर दिया गया। तब से लेकर १९३७ ई० तक वे रत्नागिरि में नजरबन्द रहे। १९३७ से १०४३ ई० तक उन्होंने 'हिन्दू महासभा' की अध्यक्षता की। अपने परवर्ती जीवन में उन्होंने हिन्दू समाज से अस्पृश्यता का कलंक मिटाने के लिए भी काफी कार्य किया। उन्हें बड़ी लम्बी आयु मिली थी। २६ फरवरी १९६६ ई० को ८३ वर्ष की अवस्था में उन्होंने अन्तिम सांस ली। व्याख्यान देने में पटु होने के साथ ही विनायक सावरकर एक सिद्धहस्त लेखक भी थे। अपने दीर्घ जीवनकाल में उन्होंने अनेक लेख, कविता, नाटक, उपन्यास लिखे तथा कई भागों में अपनी आत्मकथा लिखी। उनकी समस्त मराठी और अंग्रेजी रचनाएँ आठ खण्डों में संकलित होकर 'समग्र सावरकर वाङ्मय' नाम से १९६३ में पूना से प्रकाशितहुई।

विनायक के ज्येष्ठ भ्राता गणेश दामोदर सावरकर (१८७९-१९४५ ई०) का जीवनक्रम संक्षेप में इस प्रकार है। बचपन से ही उनका धर्म की ओर रुझान था तथा भगवद्गीता से बड़ा

लगाव था। किशोरावस्था में उनकी योग और संन्यास की ओर प्रवृत्ति हुई परन्तु तदनन्तर सक्रिय राजनीति और क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेने लगे। १९०० ई० में 'मित्रमेला' नामक गुप्त समिति की स्थापना हुई और तभी से वे इसके आधार स्तम्भ रहे। १९०० ई० में सरकारी निषेधाज्ञा की परवाह न करते हुए उन्होंने मित्रमेला की ओर से एक सभा आयोजित की इसके फलस्वरूप उन्हें पकड़कर मुकदमा चलाया गया और दण्ड भी सुनाया गया परन्तु उच्चतर न्यायालय ने उनकी सजा माफ कर दी। अगले वर्ष नासिक में पुनः उन पर 'वन्देमातरम्' सम्बन्धी अभियोग लगाया गया और एक महीने कारावास की सजा दी गयी। १९०९ ई० में सरकार ने उनको बड़े गम्भीर आरोप के साथ गिरफ्तार किया। उनके घर से विस्फोटक बनाने की प्रणाली से सम्बन्धी कागजात और उन्हीं के द्वारा प्रकाशित 'लघु अभिनव भारत माला' काव्य ग्रंथ की प्रतियाँ बरामद हुई थीं। इस पुस्तक में आम जनता को स्वाधीनता के लिए युद्ध छेड़ने का आह्वान किया गया था। न्यायालय ने इन सबको राजद्रोहात्मक साहित्य माना और उन्हें आजन्म कालापानी की सजा देते हुए उनकी सारी सम्पत्ति भी जप्त कर ली। गणेश सावरकर को दिये गये इस भीषण दण्ड की महाराष्ट्रीय युवकों पर प्रचण्ड प्रतिक्रिया हुई और इसके उत्तरदायी नासिक के जिलाधीश मि० जैक्सन की सरे-आम हत्या कर दी गयी। बाद में इस हत्या एवं तत्सम्बन्धी षडयंत्र के मामले में भी गिरफ्तारियाँ हुईं। इस मुकदमे में भी तीन लोगों को फाँसी तथा तीन अन्य को आजन्म कारावास की सजा मिली। १४ वर्ष तक जेल में बिताने के बाद बीमारी के कारण गणेशजी को छोड़ दिया गया। बाद में और भी कई बार उन्होंने जेलयात्रा की। वीर वैरागी, राष्ट्र मीमांसा, नेपाली आन्दोलन का इतिहास आदि मराठी में उन्ने कई ग्रन्थ लिखे हैं।

सबसे छोटे भाई नारायण दामोदर सावरकर (१८८८-१९४९ ई०) भी एक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी और लेखक थे। उन्होंने बड़ौदा और पूना में शिक्षा प्राप्त की। १९०९ ई० में अहमदाबाद में लार्ड मिण्टो पर बम फेंकने के मामले में उन्हें दो माह की सजा हुई। इसके अगले वर्ष जैक्सन-हत्या के सिलसिले में भी उन्हें छह मास का सश्रम कारावास मिला था। तदुपरान्त वे चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन करने कलकत्ता गये। वहाँ पर कॉलेज की फीस भरने के लिए अर्थोपार्जनार्थ उन्होंने कुछ उपन्यास लिखे। परवर्ती जीवन में उन्होंने सात वर्ष तक 'श्रद्धानन्द' पत्रिका का सम्पादन किया, अछूतोद्धार के लिए काफी कार्य किया, बम्बई प्रदेश कांग्रेस कमेटी के उपाध्यक्ष रहे और अन्त काल तक हिन्दू महासभा के संगठन कार्य में लगे रहे।

स्वाधीनता संग्राम में इतना महत्वपूर्ण योगदान करने वाले, बहुमुखी प्रतिभा के धनी ये तीनों भाई श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य के आन्तरिक अध्येता थे। इस अध्ययन का उनके आध्यात्मिक जीवन तथा राष्ट्रीय कार्यों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा था। इस सन्दर्भ में जो अल्पाधिक तथ्य हमें प्राप्त हो सकें है, अब हम उन्हीं पर चर्चा करेंगे।

कृष्णाजी नारायण आठल्ये महाराष्ट्र के एक महत्वपूण चित्रकार थे। बाद में उन्होंने कवि, लेखक और पत्रकार के रूप में भी काफी ख्याति अर्जित की। विविध विषयों पर उनकी लिखी कोई पचास पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। महाराष्ट्र में श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा के प्रचार में उन्होंने अग्रणी की भूमिका निभायी। उनके द्वारा प्रवर्तित और सम्पादित 'केरल कोकिल' नामक सचित्र मासिक उन दिनों सम्पूर्ण महाराष्ट्र में बड़ा

लोकप्रिय था। १८९७ ई० में स्वामी विवेकानन्द की सद्यः प्रकाशित कुछ पुस्तकें उनके हाथ में आयीं, जिन्हें पढ़कर वे मन्त्रमुग्ध हो गये। उन्होंने मराठी भाषा में भी इन ग्रन्थों का अनुवाद एवं प्रकाशन करने का संकल्प किया। 'केरल कोकिल' के जनवरी १८९८ ई० के अंक से स्वामीजी के 'राजयोग' का धारावाहिक अनुवाद निकलने लगा। इसके साथ ही वे क्रमशः श्रीरामकृष्ण चरित, 'सुलभ वेदान्त' नाम से उनके उपदेश तथा विवेकानंद-जीवनी भी प्रकाशित करने लगे। १८९८ ई० में उन्होंने स्वामीजी के कर्मयोग का अनुवाद पुस्तकाकार प्रकाशित किया। वीर सावरकर की रचनाओं में 'केरल कोकिल' तथा उसके सम्पादक का उल्लेख बारम्बार आया है, अतः हमारा अनुमान है कि सावरकर बन्धुओं का श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य और विशेष-कर 'राजयोग' ग्रन्थ से प्राथमिक परिचय केरल कोकिल के माध्यम से ही हुआ होगा।

स्वामी विवेकानन्द के कार्य तथा विचारों का उनके समय के युवावर्ग पर बड़ा ही अद्भुत प्रभाव हुआ था। वीर सावरकर ने अपने ज्येष्ठ भ्राता गणेश पर पड़े इस प्रभाव का वर्णन करते हुए अपनी आत्मकथा में लिखा है—"उन दिनों अर्थात् १८९८-९९ ई० के सन्धिकाल में मेरे भाईसाहब की आयु के बीसवें वर्ष में आयी हुई लहर अपनी पूर्ण पराकाष्ठा पर थी। अमेरिका में वेदान्त की विजय-दुन्दुभी बजाकर विवेकानन्द हाल में वापस लौटे थे। सारा हिन्दुस्तान उनके वेदान्तिक व्याख्यानों और राजयोग, कर्मयोग आदि ग्रन्थों से सम्मोहित हो रहा था। वे पुस्तकें और व्याख्यान हमारे भाईसाहब ने और उन्हीं की प्रेरणा से मैंने भी पढ़ीं। उसके बाद पता चला कि निर्विकल्प समाधि की प्रत्यक्ष अनुभूति से सम्पन्न राजयोगी (अर्थात् स्वामीजी) मायावती में •आश्रम बना रहे हैं और उन्होंने घोषणा की है कि वहाँ आनेवाले (साधकों) को मैं दुर्लभ राजयोग की शिक्षा दूँगा। बचपन से ही भाईसाहब के मन में योगजनित् आनन्द प्राप्त करने की तीव्र उत्कण्ठा थी और यह समाचार पाते ही वे अधीर हो उठे। उन्होंने घर से भागकर मायावती जाने की योजना बना ली। 'तत्र तं बुद्धि संयोगं लभते पौर्वदेहिकम्'—अचानक ऐसा ही कुछ हुआ और संसार के प्रति उनके मन में तीव्र वैराग्य का उदय हुआ। परिवार, समाज, राष्ट्र आदि से सम्बन्धित ऐहिक कार्य उन्हें तुच्छ प्रतीत होने लगे। यदि उस समय वे उसी भाव में निकल जाते तो सम्भवतः उनकी जीवनधारा एक अलग ही दिशा पकड़ लेती। यदि उसी उद्दीप्त तरुण के वैरागी होकर निकल जाने के संकल्प को क्रियान्वित करने के मार्ग में एक अलंघ्य बाधा न आ पड़ती और वह मायावती पहुँच जाता तो सम्भवतः उसकी जीवनदिशा कुछ और ही होती और इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन उसके प्रचण्ड अवदान से वंचित रह जाता।.... परन्तु तभी आचानक हमारे परिवार पर भी प्लेग की भयानक विपत्ति आ पड़ी।"

प्लेग की उस महामारी के दौरान सावरकर के पिता का देहावसान हो गया, परिवार के कुछ अन्य सदस्य बीमार पड़ गये और इस कारण गणेश मायावती नहीं जा सके। बाद में अपने परिवार के संरक्षण का भार उन्हीं के कन्धों पर आ पड़ा और क्रमशः वे अपने अन्य दोनों भाइयों के सहयोग से विप्लव आन्दोलन के कार्य में लग गये। परन्तु साथ ही उनकी मण्डली में श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य का अध्ययन-मनन भी चलता रहा, क्योंकि इन ग्रन्थों से उन लोगों के मन में हिन्दू धर्म और संस्कृति के प्रति अटूट आस्था का उदय होता था और साथ ही चरित्रनिर्माण हेतु साधना एवं राष्ट्र के लिए जीवन बलिदान कर देने की प्रेरणा भी मिलती थी। कहते हैं कि गणेशजी ने स्वामी विवेकानन्द के **Song of Sannyasin** (संन्यासी का

गीत) कविता का मराठी में अनुवाद भी किया था।

२३ दिसम्बर १९१० ई० के दिन विनायक को दोहरे आजन्म कारावास (पचास वर्ष) की सजा सुनायी गयी। उन्हें प्रथम एक माह बम्बई के डोंगरी जेल में, तदुपरान्त कुछ काल ठाणे जेल में रखकर अन्दमान भेज दिया गया था। अपने काराजीवन के प्रथम दिवस की मनोदशा का हाल उन्होंने अपनी 'सप्तर्षि' शीर्षक एक लम्बी कविता में वर्णन किया है। वह मराठी कविता बड़ी भावुकतापूर्ण है और उसके प्रासंगिक अंश का भावानुवाद इस प्रकार है—

"कारागार में दिनभर का कठोर व श्रमसाध्य कार्य समाप्त हुआ और मेरा मन पुनः उसी विषय पर लौट आया जिसका कि वह सुबह चिन्तन कर रहा था। उस समय मेरे ध्यान के विषय थे— महावैराग्यवान पृथ्वी के देवता श्रीमान भगवान रामकृष्ण के शिष्योत्तम स्वामी विवेकानन्द। हम जड़वादी और अश्रद्धालु लोगों की बुद्धि में सत्य-असत्य के विषय में प्रायः द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है, परन्तु जब स्वामीजी हमारे सुपरिचित जड़वाद की भाषा में ही कपिल और पतंजलि के सूक्ष्म तत्त्वों को समझाते हैं तो हमें उस पर श्रद्धा होने लगती है। उनके बुद्धिसम्मत युक्तिवाद के द्वारा मुझे विश्वास हो गया था कि 'योग कोई गोपनीय तत्त्व नहीं अपितु एक शास्त्र है'। अतः संध्या को अपने कठोर परिश्रम से छुट्टी पाकर चित्त-एकाग्रता में प्रगति करने हेतु नियमानुसार हाथ-पाँव धोकर मैंने योगिराज का राजयोग ग्रन्थ खोला। अहा! शान्ति रस का यह प्याला क्षण भर के लिए भी (मुख से) दूर करने की इच्छा नहीं होती। उसमें प्रकाशित उनकी समाधि अवस्था के चित्र को मैंने देवमूर्ति मानकर प्रणाम किया और तदुपरान्त नासिकाग्र में दृष्टि को स्थिर करके मैं मन को एकाग्र करने का अभ्यास करने लगा। परन्तु मन तो बड़ा ही चंचल है! जब साधुजनों को ही यह इतना दुर्निग्रह प्रतीत होता है तो फिर हमारे समान अनभ्यस्त जड़-जीवों की तो बात ही क्या? मेरा मन कैसे भी वश में नहीं आता था। उसे तो केवल प्रिय और अप्रिय समझता है, भले-बुरे का बोध नहीं होता। बुद्धि को छलावा देकर वह इन्द्रियों के साथ इधर उधर दौड़ता रहता है। यद्यपि मानव मन का ऐसा ही उच्छृंखल स्वभाव है तथापि सुकठिन भूसेवा का व्रत लेकर वह थोड़े नियन्त्रण में आ जाता है। इस प्रकार के निष्काम कर्म के द्वारा मेरे पास जो निधि एकत्र हुई थी, उसके बल से मन की स्वच्छन्द गति पर थोड़ा अंकुश लगता था और वह वशीभूत हो जाता था। इस कारण यत्र-तत्र दौड़कर भी, पकड़ में आते ही वह लज्जापूर्वक उस वृत्ति को त्याग देता था। इस तरह क्रमशः कई वृत्तियों का उपशम होने के बाद चित्त ध्यानमग्न हुआ, और आत्मरति की सुखद अनुभूति का थोड़ा थोड़ा आस्वादन मिलने लगा। हृदय में शान्तिरस का मोहक झरना प्रवाहित होने लगा और कैवल्यानन्द के तुषारबिन्दु छिटकने लगे। हे प्रभो! यदि तुम्हारे अदृश्य चरणों की कण मात्र भी कृपा मिल जाय तो हम जैसे त्रितापदग्ध शरणागतों का हृदय कितना शीतल हो जायगा। कैवल्यामृत की बाढ़ में स्नात और तुम्हारे अधरामृत का पान किये हुए वे (शब्द) ऐसे ही तो होंगे। उन स्तुत्य सद्गुरु की उपलब्धि के लिए इस बन्दी का चित्त लुब्ध हुआ है और वह निरन्तर उन्हीं अज्ञात देव का चिन्तन कर रहा है। नरेन्द्र विवेकानन्द की दिव्य हेतु से प्रेरित जड़वादी युक्ति पर आधारित अश्रद्धापूर्ण बातें श्रीरामकृष्ण ने सुनी। उन्होंने यह भी कहा कि 'ईश्वर नहीं हैं? यदि हों तो उन्हें बुलाइए! यदि सचमुच ही उनका अस्तित्व हो तो मुझे उनका प्रत्यक्ष दर्शन कराइए।' वे (श्री रामकृष्ण नरेन्द्र) को) स्पर्श करते हुए बोले, "वत्स, ! तू निश्चय

ही शीघ्र ईश्वर को देखेगा।' और इसके साथ ही केवल नाम के लिए ही नहीं अपितु उनका (सर्वतोभावेन) विवेकानन्द में रूपान्तरण हुआ। अहा ! उसी प्रकार स्पर्श करके प्रभु से मिला देनेवाले कोई गुरु क्या मुझे भी मिलेंगे ! यदि मिल जाएँ तो मैं अपना यह जीवन उन पर न्यौछावर कर दूँगा।"

यह भावभीना चित्रण है सावरकर के कारा-जीवन के प्रथम दिवस की मनोदशा का ! १९११ ई० में रचित उसी कविता में वे लिखते हैं कि मैं पिछले छह महीनों से इस 'राजयोग' का अभ्यास कर रहा हूँ। अपनी जेल की आत्मकथा में उन्होंने लिखा है कि प्रतिदिन 'व्यायाम करते समय मैं मुख से योगसूत्रों का पाठ करता था और उनमें एक एक सूत्र को चुनकर उस पर चिन्तन करता था।' परन्तु वह 'राजयोग' पुस्तक वे अपने साथ अन्दमान नहीं ले जा सके थे। श्री रा० बा० सोमण, जो उन दिनों ठाणे के जेल में क्लर्क की नौकरी करते थे, अपने संस्मरणों में लिखते हैं कि सावरकर के अन्दमान जाने के पूर्व उनकी जो चीजें जप्त करके नीलाम कर दी गयी थीं उनमें "कुछ पुस्तकें भी थीं, जिनमें 'राजयोग' नामक पुस्तक मैंने देखी थी ऐसा स्मरण आता है।"

अपने १४ वर्ष के सुदीर्घ कारावास के दौरान विनायक ने विभिन्न भाषाओं में कई बार रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य का पारायण किया था। उनकी सुप्रसिद्ध मराठी पुस्तक 'माझी जन्मठेप' (मेरा आजन्म कारावास) में इस तथ्य की सूचक उक्तियाँ यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। अन्दमान पहुँचते ही उन्हें पुस्तकों का अभाव खलने लगा क्योंकि (वे लिखते हैं), 'मेरी अपनी जो पुस्तकें थीं उन्हें ठाणे में ही जप्त कर लिया गया था। अन्दमान के राजबन्दियों के पास जो पुस्तकें थीं वे सब छोटी थीं। उनमें श्री रामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्दजी की कुछ पुस्तकें थीं।' १९१२ ई० के दिसम्बर में उनके छोटे भाई नारायण ने उन्हें कुछ चुनी हुई पुस्तकों का संग्रह भेजा था। उनमें स्वामी विवेकानन्द के भी ग्रन्थ पाकर विनायक ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए उन्हें प्राप्ति-संवाद भेजा था। जेल में अच्छे साहित्य का अभाव बना ही रहता था, अतः कारावासी वहाँ एक पुस्तकालय की स्थापना करना चाहते थे। कई वर्ष तक प्रयास करने के बाद जेल के अधिकारियों की अनुमति मिली और दो हजार पुस्तकों का संग्रह कर एक सुन्दर ग्रन्थालय बना लिया गया। विनायक लिखते हैं कि उसमें 'विवेकानन्द और रामकृष्ण के चरित्र विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध थे। हमने वहाँ बंगला साहित्य का यथेच्छ अध्ययन किया।...श्री रामकृष्ण की लीलामृत आदि अनेक खण्डव्यापी पूर्णांग चरित्र मैंने (बंगला में ही) पढ़ा।' वहाँ पर 'चित्रमय जगत्' नामक मराठी मासिक पत्रिका भी आया करती थी, जिसमें उन दिनों नियमित रूप से श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द विषयक सामग्री प्रकाशित हुआ करती थी। उक्त ग्रन्थालय में अंग्रेजी पुस्तकों की संख्या सर्वाधिक थी। विनायक ने लिखा है कि उनमें भी 'विवेकानन्द और रामतीर्थ के सर्व ग्रन्थों की तीन तीन प्रतियाँ थीं।' उन्होंने इस पुस्तकालय की प्रत्येक पुस्तक पढ़ लीया और वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, कुरान, बाइबिल आदि का विशेष रूप से अध्ययन किया। टामस ए केम्पिस की 'इमीटेशन' (ईसानुसरण) उनकी सर्वाधिक प्रिय पुस्तक थी। उपनिषदों को स्वामीजी ने हिन्दू धर्म और दर्शन का मूलाधार माना है और विनायक ने भी इन्हें काफी मनोयोग से पढ़ा। वे लिखते हैं, 'दशोपनिषदों को एक एक कर लेकर रात रात भर चिन्तन करते हुए एक वर्ष में उनका सर्वांगपूर्ण अध्ययन किया।'

●

स्वामी विवेकानन्द की ऐसी इच्छा थी कि

पूर्वकाल में जो लोग हिन्दूधर्म छोड़कर परमतावलम्बी हो गये हैं उन्हें पुनः वापस लाने का प्रयास किया जाय तथा हिन्दुओं का धर्मान्तरण रोका जाय। सावरकर ने इस दिशा में भी काफी कार्य किया। जेल के एक उत्तर भारतीय ब्राह्मण लड़के को एक मुसलमान कर्मचारी ने भय और लोभ दिखाकर धर्मान्तरित कर दिया था। विनायक ने इसका विरोध किया और उसे पुनः हिन्दू समाज में सम्मिलित कर लेने को अड़ गये। झगड़ा जेल के उच्च अधिकारियों तक जा पहुँचा। वहाँ वाद-विवाद के दौरान सावरकर ने स्वामीजी का ही उदाहरण दिया था। वे बोले—'ऐतिहासिक शुद्धीकरण के उदाहरण यदि छोड़ दें तो भी, आर्यसमाजी शुद्धि करके हिन्दू बना ही लेते हैं। माना कि वह भी आपको मालूम न हो, परन्तु स्वामी विवेकानन्द जब अमेरिका से लौटे थे तब आते समय उन्होंने मिस नोबल को हिन्दू दीक्षा देकर भगिनी निवेदिता बना दिया था, यह तो आपने सुना ही होगा। उनके ग्रन्थ यहाँ हमारे पुस्तकालय में हैं, आप चाहें तो इसका सत्यापन कर सकते है।' इसके अतिरिक्त जेल में एक तेलुगू कर्मचारी भी था, जिसे अपने धर्मान्तरित पिता से ईसाई धर्म विरासत में ही मिला था। विनायक के मुख से हिन्दूधर्म का इतिहास और माहात्म्य सुनकर वह पुनः हिन्दू धर्म अङ्गीकार करने को उत्सुक हुआ। उसका शुद्धीकरण समारोह हुआ और वह मन्दिर में जाकर पूजा करने लगा। सावरकर लिखते हैं कि उसने 'तिलक लगाना तथा विवेकानन्द के ग्रन्थ पढ़ना भी आरम्भ किया।'

स्वामीजी ने निवेदिता को इंग्लैण्ड से लाकर जो हिन्दू-साधना और भारत की सेवा में लगाया था, इस तथ्य ने सावरकर को मुग्ध कर लिया था। उन्होंने अपने 'हिन्दुत्व' नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में लिखा है कि जो व्यक्ति भारतवर्ष को पितृभूमि माने, जिसकी नसों में इसी देश के महापुरुषों का रक्त प्रवाहित हो रहा हो और जो इसी धरती को अपनी पुण्यभूमि माने, वही हिन्दू कहलाने का अधिकारी होगा। इस विषय पर सविस्तार चर्चा करने के पश्चात् वे लिखते हैं—"परन्तु एक स्थान पर अवश्य ही हमारे लिए थोड़ी समस्या खड़ी हो जाती है। वह यह कि क्या हम भगिनी निवेदिता को हिन्दू कह सकते हैं ? अपवाद ही नियम को प्रामाणिकता प्रदान करता है। हमारी इन देशभक्त और गौरवमयी भगिनी ने हमारे आसिन्धु सिन्धुपर्यन्त देश को अपनी पितृभूमि के रूप में स्वीकार कर लिया था। उन्हें इसके प्रति सच्चा प्रेम था और आज यदि हमारा राष्ट्र स्वाधीन होता तो ऐसी स्नेहपूर्ण आत्माओं को नागरिकता के अधिकार प्रदान करने में हम अग्रणी होते। अतः पहला लक्षण उन पर खरा उतरता है। हिन्दू पूर्वजों का रक्त होने की दूसरी शर्त उनसे पूरी होने का प्रश्न ही नहीं उठता। तथापि हिन्दुत्व का तीसरा महत्त्वपूर्ण लक्षण उन्हें हिन्दू के रूप में प्रतिष्ठित करता है क्योंकि उन्होंने हमारी संस्कृति को अपना लिया था, हमारे देश को अपनी पुण्यभूमि मानती थीं...हम हिन्दू जाति के लोग इतने कोमल-हृदय और भावुक हैं कि भगिनी निवेदिता या उन्हीं के समान अन्य कोई व्यक्ति हमलोगों के साथ इतने आत्मीयतापूर्वक घुलमिल जाता है कि वह अनजाने में ही हिन्दुत्व में स्वीकृत हो जाता है। परन्तु इसे नियम का अपवाद ही समझना चाहिए।', उपर्युक्त वाक्यों में उनकी विवेकानंद-कन्या भगिनी निवेदिता के प्रति आन्तरिक श्रद्धा अभिव्यक्त हुई है।

अन्दमान से लौटने के बाद का अपने जीवन के परवर्ती काल में सावरकर ने हिन्दू समाज से अस्पृश्यता, असमता आदि दोष दूर करने तथा उसके संगठन में मनोनियोग किया था। इसी सिलसिले में उन्होंने एक राष्ट्रध्वज का भी निर्माण

किया था। इसमें त्याग के प्रतीक गैरिक वस्त्र की पृष्ठभूमि पर ब्रह्मतेज के प्रतीक ऊँकारयुक्त कुण्डलिनी और क्षात्रवीर्य के द्योतक का चित्रण हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि इसमें कुण्डलिनी का रेखाकंन एवं व्याख्या स्वामीजी के 'राजयोग' ग्रन्थ पर ही आधारित है। वे लिखते हैं—"यह (कुण्डलिनी) किसी विशेष जाति या वर्ण की सम्पदा नहीं है। सभी लोगों में इसका निवास है। मेरुदण्ड के दोनों ओर दो नाड़ियाँ हैं, जिन्हें हिन्दू योग के शास्त्रकारों ने इड़ा और पिंगला कहा है। वे एक दूसरे के साथ माले के समान जुड़ी हुई हैं। इन दोनों के बीच एक तीसरी नाड़ी भी है, जिसे सुषुम्ना कहते हैं। उनमें कुछ नाड़ीकेन्द्र स्थित हैं जिन्हें यौगिक भाषा में पद्मों की आख्या दी गयी है; मुख्यतः छः पद्म हैं जिन्हें मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और सहस्रार कहते हैं। मूलाधार में एक अद्भुत शक्ति का निवास है, जो कुण्डली की मुद्रा में स्थित है। योग और ध्यान की साधना से यह जागती है और प्रत्येक पद्म से होकर गुजरते हुए, अद्भुत् अलौकिक अनुभूतियों की उपलब्धि कराते हुए, यह सहस्रार पद्म में पहुँचती है। तब योग के साधक को एक अद्भुत इन्द्रियातीत परम आनन्द का बोध होता है। इस अवस्था को योगीगण कैवल्यानन्द, वज्रयानी महासुख, अद्वैत-वादी ब्रह्मानन्द और भक्तगण प्रेमानन्द कहा करते हैं। हिन्दू हो या अहिन्दू, आस्तिक हो या नास्तिक नागरिक हो या वनवासी—इस परम आनन्द की अनुभूति करना ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। योगशास्त्र व्यक्तिगत अनुभूति का विज्ञान है, अतः इसमें मतभेदों के लिए कोई स्थान नहीं।" कहना न होगा कि यह सब स्वामीजी के 'राजयोग' की ही प्रतिध्वनि है।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने जीवनकाल के तथा परवर्ती अधिकांश देशप्रेमी स्वातंत्र्य-योद्धाओं को प्रभावित किया था। हमने देखा कि सावरकर बन्धुओं पर भी श्री रामकृष्ण और विशेषकर स्वामीजी का कैसा गहन प्रभाव हुआ था! यह प्रेरणा मुख्यतः उनकी योगसाधना के प्रति उनके तीव्र आकर्षण तथा मातृभूमि के प्रति उद्दाम भक्ति के रूप में रूपायित हुई थी।

छपरा के महान सन्त

स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक - स्वामी विदेहात्मानन्द

१३. ठाकुर की महासमाधि

दक्षिणेश्वर छोड़ने के तीन दिन पूर्व दोपहर को ठाकुर स्वयं ही तालतला के विख्यात् डाक्टर दुर्गाचरण वन्द्योपाध्याय के पास गये थे। वहाँ पर वे सेवक लाटू और योगीन-माँ को भी साथ ले गये थे। डाक्टर दुर्गाचरण ने ठाकुर की तरह तरह से परीक्षा की। परन्तु वे रोग का निदान कर पाने में असमर्थ रहे। ठाकुर ने जितनी बार भी उनसे पूछा कि 'रोग दूर हो जाएगा न ?' उन्होंने उतनी ही बार उत्तर दिया, 'यह दवा खाकर देखिए।' श्यामपुकुर में आकर वे लाटू से बोले—"रोग ठीक हो जाएगा या नहीं, यह तो पता नहीं, केवल यही कहता है कि दवा खाओ। मैं वह दवा नहीं खाऊँगा।" लाटू—"तो फिर वहाँ गये ही क्यों ?" ठाकुर ने कहा—"अरे, वह दक्षिणेश्वर जो जाया करता

था। इतनी बार गया था, अतः एक बार भी नहीं जाना क्या अच्छा दीखता है ? कभी उसने बुलाया तो था नहीं, इसलिए एक बार स्वयं ही जाना पड़ा। वह रात के दस बजे दक्षिणेश्वर जाकर 'हृदय' कहकर पुकारता रहता था। उसके गले की आवाज सुनते ही मैं हृदय से कहता, 'अरे, द्वार खोल दे।' हृदय द्वार खोल देता था। डॉक्टर मौन होकर वहाँ बैठा रहता था। जाते समय वह हृदय से कह जाता, 'वहाँ आना।' अर्थात् कुछ दूँगा। डॉक्टर ही जाने कि वह मुझे किस दृष्टि से देखता था।" 'कुछ' देर चुप रहकर वे पुनः कहने लगे—"आखिर के दिनों में हृदय ने मुझे क्या ही तकलीफ दी थी ! उसकी दुष्टता तब और नहीं सह पाता था। केवल बड़े लोगों को वह पकड़ लाता और कहता, 'मामा, तुम इनके साथ मिलो-जुलो, उन लोगों को छोड़ दो। देखोगे, तुम्हारे कितने ही उद्यान-भवन हो जाएँगे।' इसीलिए तो एक दिन मैंने माँ से कहा, 'माँ, उसे हटा दो।' त्रैलोक्य ने जब उसे मन्दिर से चले जाने का हुकुम दिया तब वह मुझसे कहने लगा, 'मामा, यदि तुम्हें पा जाता तो एक और काली मन्दिर खड़ा कर देता। परन्तु तुम तो आने से रहे।' हृदय पहले तो अच्छा था, बड़ी सेवा करता था, उसके न रहने पर मेरा शरीर बच पाता या नहीं, कहा नहीं जा सकता; परन्तु आखिरकार वह जमीन-जायदाद, बगीचा-मकान, धन-दौलत के लोभ में बरबाद हो गया। लक्ष्मी-नारायण मारवाड़ी से वह दस हजार रुपये लेने के चक्कर में था, पर उनके (माताजी) कारण उसकी दाल नहीं गली। मन्दिर छोड़कर जाने के बाद एक दिन वह मुझसे मिलने को आया। यदु मल्लिक के बगीचे में जाकर मैंने उससे भेंट की। वहाँ उसकी एक ही रट। उसके बाद से वह फिर कभी मिलने को नहीं आया।"

हम पहले ही कह आये हैं कि रामबाबू, गिरीश बाबू, बलराम बाबू आदि वयस्क भक्तों ने ठाकुर को (दक्षिणेश्वर से) कलकत्ता लाकर चिकित्सा की व्यवस्था करने की इच्छा व्यक्त की थी। ठाकुर उन लोगों की बात स्वीकार करके कलकत्ते के मकान में आये। लाटू महाराज ने हम लोगों से कहा था —"बाग बाजार में जो मकान किराये पर लिया गया था, वह ठाकुर को पसन्द नहीं आया। बोले, 'इतने छोटे-छोटे कमरे ! यहाँ रहने से तो दम ही रुक जाएगा ! भाई, तुम लोग एक दूसरा मकान देखो।' ठाकुर की बात सुनकर बलराम बाबू उसी दिन उनको (वहाँ से) अपने घर ले गये। वहाँ पर वे सात दिन रहे ! उन सात दिनों के भीतर ही दानाकाली ने अपने मुहल्ले में एक मकान भाड़े पर ले लिया। एक दिन रामलाल (दादा) दक्षिणेश्वर से उनकी खाट बलराम-भवन में ले आये। रामलाल (दादा) को खाट लाते देखकर वे बड़े नाराज हुए और बोले, 'तुम लोग क्या पंजिका आदि देखकर निकलना भूल गये हो ? यह खाट इस समय दक्षिणेश्वर लौटा ले जाओ, जरूरत होने पर खबर करूँगा।' उनकी बात सुनकर रामलाल (दादा) खटिया को वापस ले गये। बाद में जिस दिन योगीनभाई माँ (श्री सारदा देवी) को दक्षिणेश्वर से श्यामपुकुर लाये, उसी दिन वह खाट भी गाड़ी में ले आये।

"श्यामपुकुर में कई डॉक्टर आये थे, जिनमें एक दाढ़ी वाले डॉक्टर भी थे। उनकी दवा से ठाकुर का शरीर गरम हो गया, गले से खूब रक्त और मवाद निकलने लगा। तब गिरीश बाबू ने डॉक्टर महेन्द्र सरकार का नाम सुझाया। महेन्द्र बाबू देखने आते तो दो-चार घण्टे ठहर जाते और उसके साथ बहुत सी बातें करते रहते। पहले तो वे ठाकुर को मानना ही नहीं चाहते थे, पर अन्त में जब तर्क में उनसे जीत नहीं पाये तब उन्होंने उनको मान लिया।"

श्यामपुकुर में सेवक लाटू के जीवन में एक घटना हुई। उस दिन महेन्द्र डॉक्टर भी वहाँ उपस्थित थे। डॉक्टर सरकार की ऐसी धारणा थी कि स्नायविक दुर्बलता के फलस्वरूप होनेवाले एक रोगविशेष को ही लोग भावावेश कहते हैं। ठाकुर के समक्ष भी उन्होंने वही वात कही। उनकी वह भ्रान्त धारणा दूर करने के लिए एक दिन ठाकुर ने एक लीला की। उस दिन एक व्यक्ति का गायन सुनकर समवेत भक्त गण भावविभोर उठे थे। श्री होम द्वारा लिखित 'श्रीरामकृष्ण-वचनामुत' ग्रन्थ के तृतीय खण्ड से हम उक्त प्रसंग का कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

''गाने के साथ ही इधर अद्भुत् दृश्य दिखाई देने लगा—भावावेश में सब लोग पागल हो रहे हैं। पण्डित अपने पाण्डित्य का अभिमान छोड़कर खड़े हो गये। कह रहे हैं—'माँ, मुझे पागल कर दे, ज्ञान और विचार की अब कोई आवश्यकता नहीं है।' सब से पहले आसन छोड़कर भावावेश में विजय खड़े हुए, फिर श्रीरामकृष्ण देह की कठिन असाध्य व्याधि को बिलकुल भूल गए हैं। सामने डॉक्टर हैं। वे भी खड़े हो गए। न रोगी को होश है, न डॉक्टर को। छोटे नरेन्द्र और लाटू दोनों को भावसमाधि हो गयी। डॉक्टर ने साइन्स (विज्ञान) पढ़ी है, परन्तु यह विचित्र अवस्था देखते अवाक् हो रहे हैं। देखा, जिन्हें भावावेश है, उनमें वाह्यज्ञान विलकुल नहीं रह गया। सब स्थिर और निःस्पन्द हो रहे हैं। भाव का उपशम होने पर हँस रहे हैं, कोई रो रहे हैं, मानो कुछ मतवाले इकट्ठे हो गये हों।'

इस घटना के वाद सवने पुनः आसन ग्रहण किया। श्रीरामकृष्ण (डॉक्टर से)—यह जो भाव तुमने देखा, इसके सम्बन्ध में तुम्हारी साइन्स क्या कहती है? तुम्हें क्या यह जान पड़ता है कि यह सब ढोंग है? डॉक्टर (श्रीरामकृष्ण से)—जहाँ इतने आदमियों को ऐसा हो रहा है, वहाँ तो स्वाभाविक ही जान पड़ता है; ढोंग नहीं मालूम होता।'.

श्रीम द्वारा वर्णित एक अन्य घटना भी देता हूँ। यह भी श्यामपुकुर में ही घटित हुई थी। काली पूजा का दिन था। ''दोपहर को गिरीश और कालीपद ये दो जन मिलकर ठाकुर को भजन सुना रहे हैं।... गाना सुनते-सुनते खोका (मणीन्द्र), लाटू आदि दो-तीन भक्तों को भावावेश हो गया। लाटू निरंजन की वगल में वैठा हुआ था।''

उसी दिन रात की वात हमने लाटूमहाराज के मुख से इस प्रकार सुनी है—''सन्ध्या के वाद उन्होंने मुझे धूपधूना आदि सव ठीक करके रखने को कहा। कमरे में उस समय अनेक भक्त थे। ठाकुर ने उन सब को ध्यान करने को कहा। उसी समय गिरीश वाबू ने 'जय माँ' 'जय माँ' कहते हुए ठाकुर के चरणों पर फूल की माला चढ़ा दी। ठाकुर उस समय समाधि में थे। उनकी उसी अवस्था में सभी अंजलि भर-भर फूल लेकर उनके पाँवों में देने लगे। मैंने भी एक फूल उनके चरणों में अर्पित किया। काफी देर वाद उन्होंने सबको सुरेन्दर वावू के घर जाने को कहा। मेरा उस दिन जाना नहीं हो सका। उस रात उन्होंने मुझे कितनी ही वातें कहीं थीं! साकार-ध्यान के वारे में कहते-कहते निराकार-ध्यान के बारे में भी मुझे वता दिया। उस दिन उन्होंने कहा था—'ध्यान क्या एक ही प्रकार का होता है रे? एक तरह का ध्यान है। जिसमें अपने को मछली समझना चाहिए और ब्रह्म मानो अगाध समुद्र है जिसमें मैं खेलते हुए विचण कर रहा हूँ। और एक प्रकार का है जिसमें अपने शरीर को सिकोरा समझना चाहिए, मन-बुद्धि उसका जल है और उसी जल पर सच्चिदानन्द-सूर्य की छाया ढाया पड़ रही है। न्यां-.टा तोतापुरी) एक तरह के ध्यान की वात कहता था। (सर्वत्र) जल ही जल है, ऊपर जल है, नीचे जल है, उसके भातर मानो एक घट है जिसके

बाहर-भीतर जल है। और भी एक है जिसमें सच्चिदानन्द आकाश में (आत्मारूपी) पक्षी आनन्द पूर्वक उड़ते हुए विचर रहा है। ये सब ज्ञानी के ध्यान की विधियाँ हैं। इन ध्यानों में सिद्ध होना बड़ा कठिन है।"

ये बातें सुनकर एक भक्त ने पूछा—"महाराज ! ज्ञानी के ध्यान और भक्त के ध्यान में कुछ पार्थक्य है क्या ?"

लाटू महाराज—"अवश्य है ! भक्त नाम-रूप को लेकर ध्यान करता है और ज्ञानी जीवन तथा ब्रह्म के सम्बन्ध को लेकर ध्यान करता है। परन्तु चाहे जो भी लेकर ध्यान करो, अन्त में दोनों एक ही जगह पहुँचते हैं। समझ लो कि जब ध्यान जम जाता है तब नाम भी छूट जाता है, सम्बन्ध का ज्ञान भी चला जाता है। तब एक भाव जैसा रह जाता है परन्तु वह क्या है यह मुख से नहीं कहा जा सकता। एक दिन तो उन्होंने हम लोगों को कहा था—'ध्यान जम जाने पर अखण्ड का बोध आ जाता है'।"

भक्त—"अखण्ड के बोध से क्या तात्पर्य है, महाराज ?"

लाटू महाराज—"वह क्या मुख से कहा जा सकता है ? उस बोध में देहज्ञान नहीं रह जाता, मन का संकल्प-विकल्प कुछ भी नहीं रहता, बुद्धि भी चली जाती है; तब केवल बोध ही बोध रह जाता है।

(क्रमशः)